—अनिरुद्ध

लेखक—
राधेश्याम कथावाचक.

॥ श्री ॥

"श्रीसूरविजयनाटक समाज" के
स्टेज पर खेलनेवाला
धार्मिक, मनोरञ्जक,
और उपदेशप्रद

नाटक

सर्वाधिकार स्वरक्षित

लेखक और प्रकाशक-

पं० राधेश्याम कथावाचक ।

अध्यक्ष-
श्रीराधेश्याम पुस्तकालय
बरेली ।

प्रथम बार २०००] सन् १९२५ [मूल्य ॥)

नाटक प्रेमीवृन्द ।

'श्रीसूरविजय नाटक समाज' के मालिक श्रीयुत लवजी और डाइरेक्टर श्रीयुत भगवानजी भी बड़े ज़बर्दस्त आदमी हैं। गतवर्ष जब 'सूरविजय' बरेली में आई तो २० दिनही में उन्होंने मुझसे यह नाटक 'स्टेज करने के वास्ते' लिखवा लिया।

बात यह हुई कि मेरे श्रद्धास्पद, ऋषिकुल हरिद्वार के संस्थापक, महामहोपदेशक रायसाहब श्रीयुत दुर्गादत्तजी पन्त आनरेरी मजिस्ट्रेट काशीपुर (जिन्हें मैं बचपन से 'चाचाजी' कहता हूँ) उन्हीं दिनों बरेली आगये। इस नाटक का कथानक उन्हीं ने कुछ लिखा था, परन्तु उनका वह लेख साहित्य के क्षेत्र का था, नाटक के स्टेज का नहीं। उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि मैं उसे नाटक के रूपमें लाऊँ और 'सूरविजय में स्टेज कराऊँ। इधर उनकी आज्ञा मैंने शिरोधार्य्य की और उधर सूरविजय के मेरे उपरोक्त प्रेमियों के प्रेम ने मुझे परास्त किया, परिणाम यह हुआ कि खेलही खेल में यह एक खेल तैयार होगया।

सच पूछिए तो इस नाटक की तरफ़ ध्यान दिलाने, इसे लिखवाने, खिलवाने यहाँतक कि प्रकाशित करने तक का श्रेय चाचाजी (इसजगह 'पन्तजी' न लिखकर चाचाजी ही लिखता

मुझे प्यारा मालूम होता है) को ही है, और कामिक का बहुत सा भाग तो उन्हीं की विशाल बुद्धि की उपज है। शेष उनके आशीर्वाद का फल है। मैं क्या हूँ, मुझ अल्पज्ञ की क्या शक्ति है। भगवान् जैसा चाहते हैं वैसा अपने बालकों से करा लिया करते हैं:-

मेरे दिल को दिल न समझो, मेरी जाँ को जाँ न समझो।
कोई और बोलता है, ये मेरी ज़बाँ न समझो॥

अन्त में, इस नाटक के लिखने के दिनों में जो दो प्यारी शक्तियाँ मेरी सहायक रही हैं उनका भी ज़िक्र किए बिना यह 'निवेदन' समाप्त नहीं किया जासकता। उनमें एक हैं मेरे प्रिय सतीशकुमार बी० ए० (भ्रमर-सम्पादक) और दूसरे हैं मेरे अनुज मदनमोहन लाल शर्म्मा (उत्तर-रामचरित्र लेखक)। मैं सोच रहा हूं कि इन्हें धन्यवाद दूं या आशीर्वाद! या हँसकर यह कहदूं कि यह 'नाटे' ही इस नाटक की खड़खड़िया को खींचकर स्टेज तक लेगए। अच्छा, दोनों बने रहो।

पाठकों को इस नाटक में प्रेम मिलेगा, धर्म्म मिलेगा, और कहीं कहीं शिक्षा भी मिलेगी, ज़्यादातर क्या मिलेगा, यह मैं भी नहीं जानता। इतना अवश्य जानता हूं कि कुछ मिलेगा ज़रूर। इसीलिए इसे प्रकाशित करके इस महायज्ञ की आज पूर्णाहुती करता हूं।

गम्भीर, उदार महज्जन की, यदि कृपादृष्टि अपनाती है।
तो बूंद भी नन्ही, छोटीसी, सागर का पद पा जाती है।

बरेली
रथयात्रा, आषाढ़ १९८२ वि०

अकिञ्चन-
राधेश्याम।

पात्र परिचय

पुरुष पात्र ।

भगवान् शङ्कर–महादेव ।
भगवान् कृष्ण--विष्णुदेव ।
महाराज उग्रसेन–भगवान् कृष्ण के नाना ।
बलराम–भगवान् कृष्ण के भाई ।
अनिरुद्ध–भगवान् कृष्ण के पौत्र । प्रद्युम्न के पुत्र ।
सुदर्शन–पुरुष रूप में भगवान् कृष्ण का चक्र ।
गरुड़–भगवान् कृष्ण का वाहन ।
उद्धव–महाराज उग्रसेन के प्रतिष्ठित सभासद् ।
सुबुद्धि महाराज उग्रसैन का द्वारपाल ।
वाणासुर–एक शिवभक्त, प्रतापी राजा ।
पुरोहित–वाणासुर का उपरोहित ।
विष्णुदास–एक वृद्ध, विष्णु भक्त ।
कृष्णदास–विष्णुदास का पुत्र ।
माधोदास–एक मूर्ख वैष्णव ।

गोमतीदास--
सरयूदास--
कौशिकीदास-
} वैष्णव दल

गंगादास-एक धर्म प्रेमी बालक ।

भोलागिरि--
गौरीगिरि--
शङ्कर गिरि--
एक शैव--
} शैव दल

धूम्राक्ष-
पिंगाक्ष--
वज्र मूर्त्ति--
चक्र शक्ति--
} वाणासुर के सैनिक ।

स्त्रीपात्र ।

भगवती पार्वती--महादेवी ।

रुक्मिणी--भगवान् कृष्ण की पटरानी ।

रुक्मवती--अनिरुद्ध की माता, प्रद्युम्न की स्त्री ।

ऊषा- वाणासुर की पुत्री ।

चित्रलेखा--	ऊषा की सहेलियाँ ।
चंचला--	
शारदा -	
सरस्वती--	
माधुरी--	
प्रभा--	
प्रतिभा--	
मनोरमा--	

राधारानी--कृष्णदास की स्त्री ।

माधवी--एक सत्सङ्ग प्रेमिनी नारी ।

भूमिका

प्राचीन समय से भारतवासी नाटक लिखने और देखने के प्रेमी रहे हैं। उन्होंने नाट्यशास्त्र में जो ख्याति प्राप्त की वह किसी से छिपी नहीं है। भरतमुनि नाटकशास्त्र के पिता माने जाते हैं, परन्तु संस्कृत का सबसे पहला नाटक भासमुनि ने लिखा। कालिदास और भवभूति ने काव्य और नाटक में जो उन्नति करके दिखाई, उसके सामने युरोप के बड़े २ नाट्यकार भी सर झुकाते है। जर्मनी का प्रसिद्ध कवि गेटे 'शकुन्तला' पर इतना मुग्ध था, कि उसने स्वयम् शकुन्तला के कुछ अंशों का छन्दोवद्ध अनुवाद किया। युरोप के कुछ नाट्यकारों ने कालिदास की रचना की इतनी प्रशंसा की कि उसके सामने वे चरित्र चित्रण और उच्चभाव प्रदर्शन में शेक्सपियर की रचना को भी हेच समझने लगे।

मुसलमानों के शासनारम्भ से संस्कृत भाषा की अवनति का काल शुरू हुआ। धीरे २ संस्कृत नाटकों की रचना बन्द सी होगयी। अरब और फ़ारिस के लोग नाटक के नाम से घृणा करते थे, इसलिए मुग़ल शासनकाल में भारत की किसी भाषा में नाटक न लिखे गये। हां, अंग्रेज़ों के हिन्दुस्तान में आने के समय से बङ्गभाषा ने विशेषोन्नति की और उसके पुजारियों में माननीय द्विजेन्द्र लाल राय जैसे अद्वितीय नाट्यकार हुए। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की किसी अन्य भाषा ने द्विजेन्द्र बाबू की प्रतिभाशाली रचना का उदाहरण न दिया। उर्दू भाषा तो अङ्गरेज़ी के अनुवाद और लौकिक प्रेम के छोटे मोटे गन्दे ड्रामों से सन्तुष्ट रही। उस समय की जनता के लिये उत्तम मानसिक खाद्य न मिल सका। इसलिए उसकी रुचि गिरती ही गयी। इधर देवनागरी में संस्कृत के उत्तमो-

त्तम नाटकों के अनुवाद हुए और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र राजा लक्ष्मणसिंह और बाबू बालमुकन्द गुप्त जैसे विद्वानो ने अपनी लेखनी उठाई। समय आया कि लोग अनुवाद के जूठे भोजन से घबड़ागये और मौलिक नाटकों की इच्छा प्रकट करने लगे। उर्दू लेखकों ने हिन्दी पढ़ना आरम्भ की। धार्मिक और पौराणिक कथानकों को लेकर नाटक लिखे जाने लगे। रामायण और महाभारत की छानबीन होने लगी। क्या यह हिन्दी भाषा और मुसलमान जाति के लिये कम गौरव की बात है कि श्रीयुत आगाहश्र ने 'भक्त सूरदास' और 'मधुर मुरली' नामक अपने दो अच्छे नाटक हिन्दी में लिखे।

इस समय जो नाटक हमारे सामने है उसका नाम 'ऊषा अनिरुद्ध' है। नाटक पढ़कर भूमिका लिखने और नाटक को स्टेज पर देखकर भूमिका लिखने में उतना ही भेद है जितना बिना खाँड का दूध पीने और खांड डालकर दूध पीने में है। मैंने इस नाटक को स्वयम् श्रीसूरविजय नाटक समाज के स्टेज पर खिलते देखा है। मैं तो सुना करता था कि नाटक लिखना महीनों और वर्षों का काम है, परन्तु यह नाटक बीसही दिन में लिखदिया गया, क्या यह अद्भुत बात नहीं है? पंडित राधेश्यामजी अभिमन्यु और प्रह्लाद' जैसे लोकप्रसिद्ध नाटकों के रचयिता हैं। यह दोनों नाटक पंडितजी के यश और कीर्ति को जितना बढ़ानेवाले हैं, उससे कम वे हिन्दी भाषा का भी मान बढ़ाने वाले नहीं हैं। उक्त पंडितजी द्वारा 'ऊषा अनिरुद्ध' का लिखा जाना नाटक की उत्तमता का पर्याप्त प्रमाण है।

नाटक का कथानक श्रीमद्भागवत से लिया गया है। ऊषा राजा वाणासुर की पुत्री है। वह अनिरुद्ध कुमार से विवाह करना चाहती है, दोनों के प्रेममार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं, परन्तु अन्त में सफलता प्राप्त होती है। नाटक मे दूसरे अंक का चौथा दृश्य अर्थात् 'ऊषा का महल वाला सीन' मुख्य है। यही समस्त नाटककी कुंजी है, इस से पूर्व का सारा कार्य दोनों प्रेमी और प्रेमिका के मिलन के हेतु होता है

और इसके आगे का सारा कार्य उस मिलन को सफलीभूत करने के हेतु। इस मुख्य कथानक की शोभा को द्विगुण करने के निमित्त शैव और वैष्णवों के मतमतान्तर के वाद विवाद का उपकथानक जोड़ दिया गया है।

इस नाटक से उपदेश जो मिलता है वह मार्लो के शब्दों मे इस प्रकार प्रकट किया जासकता है :—"Love God, Love your neighbour, Do your work" अर्थात्— परमात्मा से प्रेम करो, अपने पड़ोसी से प्रेम करो और अपना कर्तव्य पालन करो। उपदेश कथानक में गुंथा हुआ है, इसलिये किसी स्थान पर दोनों का पृथक करके दिखाना सम्भव नहीं है।

नाटक शिव और पार्वती के सम्वाद से प्रारम्भ होता है। नाटक के शिवजी दयालु और भोलानाथ हैं। वे वाणासुर का कठोर तप देखकर उसको अजेय शक्ति प्रदान करदेते हैं, यद्यपि वे जानते हैं कि इससे ससार को कितनी हानि पहुंचेगी। वाणासुर और बलराम के युद्ध के समय शिवजी उस झगड़े को शान्त करते हैं और वाणपुत्री ऊषा और श्री कृष्ण के पौत्र राजकुमार अनिरुद्ध का विवाह कराते हैं। अङ्गरेज़ी के नाटककार इसे Deus Ex Machina कहते हैं। वे इसे एक प्रकार का दोष मानते हैं कि किसी कार्य को साधने के लिए सहसा किसी देवता अथवा अन्य अलौकिक शक्ति का आश्रय लिया जाय, परन्तु हिन्दी नाटकीय संसार इसमें कोई त्रुटि नहीं देखता।

श्रीमती पार्वतीजी का चरित्र एक देवी का चरित्र है। दया के वशमें होकर वे वाणासुर को एक कन्या का प्रसाद देती हैं।

इस नाटक के श्रीकृष्ण गीता के श्रीकृष्ण का पूर्वपरिचय दे रहे हैं। वे सुख दुःख में समान हैं। वे स्त्री, पुत्र, पौत्र और बन्धु बान्धवों के सारे कार्यों को उदासीन भाव से देख रहे हैं। वे वृद्ध हैं। उनमें योगियों की शान्ति है। वे शत्रु की प्रजा के हितचिन्तक हैं, और नहीं चाहते कि वाणासुर की धनहीन प्रजा, दरिद्री कृषक, और लाभदायक संस्थायें योद्धाओं के क्रोध का आखेट बनें। वे युद्ध में कूट नीति के पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि वे उद्धव जी को नियमानुकूल लड़ने का उपदेश करते हैं। वे

प्रत्येक काम केवल परोपकार की लालसा से करते हैं। उनका विचार है कि वृद्धावस्था त्याग और शान्ति का पाठ करने के लिये बनाई गयी है। अन्त में पुत्रवधू की करुणा भरी पुकार सुन कर वे युद्ध में जाने को तैयार होते हैं।

बलराम ज़रा सी बातमें क्रुद्ध होजाते हैं। उनमें सहनशीलता कम है। अनिरुद्ध के महल से अन्तर्ध्यान होने का समाचार सुनते ही वे आपे से बाहर होजाते हैं। वे तुरन्त सेना भेजने की सलाह देते हैं। वे कृष्ण की शान्ति और नियमपरायणता के विरुद्ध हैं।

रुक्मिणी भारत की नारी का आदर्श है। उसमें अपने स्वजनों के प्रति मोह और अनुराग है। वह पुत्र और पौत्र को संकट में देख कर चुप चाप नहीं बैठ सकती।

नारद जी देवर्षि हैं, परन्तु शोक है कि हिन्दी नाट्यकारों ने उनके आसन को नीचा गिरा दिया है। जहां आवश्यकता पड़ती है, उन्हें बुलाया जाता है। जहां कलह कराना हो वहाँ उनका प्रवेश कराया जाता है। यहां तक कि 'झगड़ालू' और 'नारद' पर्यायवाचक शब्द मान लिये गये हैं। हमें आशा है कि नाट्यकार नारद को हास्य पात्र न बनाकर, उनको उनका खोया हुआ सम्मान लौटाने की कृपा करेंगे। हर्ष की बात है कि इस नाटक में नारद फिर भी बहुत सम्भले हुए हैं।

जैसा नाटक के नाम से प्रकट होता है, नाटक की प्रधान पात्री ऊषा है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत की ऊषा से इस नाटक की ऊषा सब बातों में बढ़ी चढ़ी है। पार्वती के प्रसाद से वह स्वप्न में अनिरुद्ध को देखती है। केवल इसी कारण वह उसको अपना वर चुन लेती है। विवाह से पूर्व दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह अनिरुद्ध से प्रेम करती है, परन्तु उसका प्रेम सच्चा और गहरा है। जैसा पार्वती जी ने मन में ठाना था कि 'वरउं शम्भु न तु रहउँ कुवाँरी' ठीक उसी प्रकार ऊषा भी मन में प्रतिज्ञा कर लेती है कि मैं इस जीवन में केवल अनिरुद्ध से विवाह करूंगी—

एक बार जिसको वरा, है वह ही भरतार।
भिभरी नैया का वही, पति है बस पतवार॥

अत्याचारी पिता का भय उसको अपने प्रण से नहीं हटा सकता। वह क्षत्रिय बालिका है और किसी स्थान पर अपने क्षात्र धर्म से नहीं गिरती है, यहां तक कि पिता की खड्ग के सामने अपने पति को बचाने के निमित्त वह स्वयम् अपना शिर रख देती है।

चित्रलेखा वाणासुर के मन्त्री की पुत्री और ऊषा की सब से प्रिय सखी है। उसका चरित्र नाटक में सब से अनोखा है। वह उड़ना जानती है, स्वप्न का अर्थ बतला सकती है और चित्र भी खींच सकती है। इससे विदित होता है कि प्राचीन समय में नारियां अनेकों कलायें जानती थीं और शास्त्र प्रवीणा होती थीं। उस समय मूर्खता का होना स्त्रियों का आभूषण न समझा जाता था और न उनकी पूजा केवल बाह्य सौन्दर्य और वस्त्रशृंगार के कारण होती थी। अपनी सखी ऊषा के हित साधनार्थ वह प्रत्येक कष्ट सहने को तैयार है। वह आकाश मार्ग से जाती, अपने को भयानक स्थिति में डालती अनिरुद्ध के राजभवन में बेधड़क घुस जाती और अनिरुद्ध को पलंग समेत ले आती है। ऊषा और अनिरुद्ध की प्रथम भेंट कराने में उसने जिस कौशल से काम लिया है वह उसी का अंश है। वह बात चीत करने में और विशेष कर हास्य रस में दक्ष है।

हमारी राय में नाटक का मुख्य पात्र अनिरुद्ध नहीं बल्कि वाणासुर है। वाणासुर एक अत्याचारी राजा है। वह शैव है और वैष्णवों को भरपूर दुःख देता है। शिवजी के प्रसाद से उसे अजेय शक्ति और पार्वती जी के प्रसाद से एक कन्यारत्न प्राप्त होता है। कन्या के जन्म पर राजा ऐसा ही प्रसन्न होता है जैसा कोई पुरुष पुत्रोत्पत्ति से होता है। कन्या के पैत्रिक प्रेम और भक्ति के विषय में वाणासुर ने जिन भावों को प्रकट किया है वे आजकल उन हिन्दू गृहस्थों के विचार करने योग्य हैं जो कन्या जन्म पर शोक करते और उसके आगम को सृष्टि की ओर से दुर्भाग्य का चिन्ह समझते हैं।

बाणासुर यह बात किसी प्रकार भी नहीं सह सकता कि उसकी कन्या किसी वैष्णव के साथ विवाही जाय। इसी निमित्त वह ऊषा को कैद करने की प्रतिज्ञा करता है, और अन्त में वह अनिरुद्ध को मारडालने का प्रयत्न रचता है। वह महादेव जी का अनन्य भक्त है, इस कारण उनकी आज्ञा उल्लंघन नहीं करता। शिव जी के समझाने पर कि 'हरी हर दोनों एक समान' वह वैरभाव को त्यागकर अपनी कन्या अनिरुद्ध कुमार के साथ ब्याह देता है।

नाटकका तीसरा मुख्य पात्र अनिरुद्ध है। चित्रलेखा द्वारा वह आकाशमार्ग से ऊषा के महल में लाया जाता है। जागने पर वह अपने आपको बिलकुल नये स्थान में पाता है। ऊषाकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसके हृदय में 'Love at first sight' प्रेम का भाव सहसा उदय होता है।

Dead shepherd! now I find thy saw of might,
Who ever loved, that loved not at first sight?
(As you like it.)

वह केवल कोरा प्रेमी ही नहीं है, बल्कि क्षत्रिय वीर है। उसके यह शब्द कि "मौत का खयाल उन्हें होता है जो दौलत के कुत्ते हैं, हिर्स और हविस के बन्दे हैं" भली भाँति उसके आन्तरिक भावों को प्रकट करते हैं। अन्त में मनोवाँछित प्रिया ऊषा के साथ उसका विवाह होता है।

उग्रसेन उन राजाओं में से हैं, जिनके हृदय में प्रजाके सुख का विचार सर्वोपरि है। वे अपने भोग विलास में समय बिताना और प्रजा की सुध न लेना राजकीय कर्त्तव्य के विरुद्ध समझते हैं। उनमें क्रोध नहीं है। अनिरुद्ध के महल से गायब होने की बातका वह पता तो चलाते हैं, परन्तु बड़ी सावधानी से। उन्हें अपने पुत्र पौत्र से उतना ही स्नेह है जैसा कि एक वृद्धको होना चाहिये। वह कृष्ण के प्रति अपना विशेषानुराग इस कारण दिखलाते हैं, क्योंकि कृष्ण सुख दुःख में समान हैं।

भगवान् कृष्ण का सुदर्शन चक्र अनिरुद्ध के शयनागार का पहरेदार है। सुदर्शन स्वामिभक्त और कर्तव्यपरायण है। जहाँ पर उसे नियुक्त कर दिया जाय, वहां से वह हटता नहीं है।

वह चित्रलेखा की चाल में आजाता है। मनमें यह विचारकर कि कहीं माता रुक्मवती अप्रसन्न न हो जाँय, उनकी आज्ञा से वह पहरे पर से हट कर नारद के पास जाता है।

विष्णुदास धर्म पर बलिदान होजाने वाला वीर है। वह 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' के मन्तव्य पर कटिबद्ध है। वीर हक़ीक़त की नाईं वह अपने जीवन का मोह नहीं करता है। उसकी दृढ़ता निम्नलिखित पद्योंसे भली भाँति प्रस्फुटित होतीहै--

सूर्य चाहे अपनी गर्मी छोड़दे,।
शेष चाहे अपनी शक्ती छोड़ दे॥
पर नहीं होगा यह तीनों काल में।
विष्णु सेवक विष्णुभक्ती छोड़ दे॥

उसकी मृत्यु के समय के अन्तिम शब्द 'इस अत्याचारी से मेरी हत्या का बदला लेना" उसके पुत्र कृष्णदासको मार्ग दर्शानेवाले हैं। प्रायः महात्मा पुरुषों को उत्तम सन्तान का सौभाग्य नही प्राप्त होता है, किन्तु विष्णुदास उन भाग्यशाली पुरुषों में है जिसका पुत्र भी पिता से कम धर्मनिष्ठावाला और कम कर्तव्यपरायण नहीं है। शेक्सपियर के प्रसिद्ध पद्यों में—
'Stone walls do not make a prison, nor ironbars a cage'
वह आत्मा की स्वतंत्रता में दृढ़विश्वास रखता है।

नाटक में कृष्णदास का चरित्र भी ज़बरदस्त है। वह केवल सामान्य वैष्णव ही नहीं बल्कि उस धर्म का प्रचारक है। वह उस धर्म को मानकर स्वयम् ही मुक्ति नहीं चाहता बल्कि दूसरों को भी उस मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है। वह साधुओं को संगठित करना चाहता है और उसका विश्वास है कि जात्युत्थान में इनसे पूर्ण सहायता मिल सकती है। उसमें धर्म विश्वास के साथ २ एक धारणा और एक निश्चलता है, वह दलबन्दी का पक्षपाती है, परन्तु किसी द्वेष-भाव से नहीं। उसकी राय में प्रकृति का आधार संगठन है, और यदि अपनी जाति को नष्ट होने से बचाना है और दूसरी जातियों से मैत्री करनी है तो उनके समान बनना चाहिये,

क्योंकि "प्रीति बराबर वालों में होती है, छोटे बड़ों में नहीं होती।" राजा का कोप उसे अपने उद्देश्य से विचलित नहीं करसकता, पिता की मृत्यु उसे अपने कार्य में अधिक लीन कर देती है।

माधोदास एक अनपढ़ और अज्ञानी महन्त है। वे आज कल के उन साधुओं का नमूना हैं जो दूसरों को चेला करना और उनका जीवन व्यर्थ नष्ट करना ही अपना उद्देश्य समझते हैं। वे अपने शिष्यों पर धाक बैठालने के लिये अपने आप को शास्त्र प्रवीण प्रकट करते हैं।

. पुरोहितजी महाराज आजकल के पुरोहितों का नमूना हैं। वे कन्योत्पत्ति के समय राजदरबार में पत्री देखते हैं। यह बात ठीक २ निश्चित नहीं है कि वे ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता हैं अथवा नहीं, परन्तु इतना सत्य है कि वे राजा को प्रसन्न करने के निमित्त ग्रहों का सारा फल 'बहुत अच्छा' बतलाते हैं।

नाटक को रोचक बनाने के निमित्त गोमतीदास, सरयूदास, कौशिकीदास आदि अन्य छोटे २ पात्रों की कल्पना की गयी है। उनका नाटक में कोई आवश्यक और मुख्य भाग नहीं है। इस कारण उनके विषय में लिखने की आवश्यकता नहीं है।

बीसवीं शताब्दी के भारतवर्ष को वीर रस और रौद्र रस की आवश्यकता है। इस हीन हिन्दू जाति के प्रत्येक बालक को यह बतलाने की ज़रूरत है कि इस संसार में किसी विचार और आदर्श के लिये किस प्रकार प्राण दिये जासकते हैं। साँसारिक सुखों में लीन रहना और झूठे शृंगार की कोमल टहनियाँ पकड़ कर आकाश पर चढ़ने की इच्छा करना इस मानवी जीवन का उद्देश्य नहीं है। इस समय क्षत्रियत्व की आवश्यकता है। बाणासुर और विष्णुदास की बात चीत और दूसरी ओर बाणासुर और अनिरुद्ध के गर्मागरम सम्वाद से इन दोनों रसों की प्रधानता प्रकट होती है।

नाटक में शृंगार अथवा प्रेमरस का होना उतना ही आवश्यक है जितना अन्य किसी रस का। मानवी जीवन में शृंगार सबसे अधिक प्रभाव रखता है, यहाँ तक पशुपक्षी, जल

थल, बेल बूंटे और फूल पत्ते सब उसके वशीभूत हो जाते हैं। जिस प्रकार सूखी खेती को पानी हरा करदेता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य के थके हुये अंगों को शृंगार प्रोत्साहित करदेता है। जिस प्रकार अधिक वर्षा खेती को हानि पहुंचाती है, उसी प्रकार कृत्रिम और अप्राकृतिक शृङ्गार रसकी अधिक मात्रा मनुष्य में आलस्य, प्रमाद आदि उत्पन्न करके उसे जीवन-युद्ध के सर्वथा अयोग्य बना देती है। यही कारण है कि हमारे देशके नवयुवक नाटक देखकर अपना चरित्र सुधारने की अपेक्षा उसे बहुत जल्दी बिगाड़ लेते हैं। नाटक के अन्य रस उनमें कोई उच्चभाव प्रकट करने की दृढ़ता नहीं रखते, केवल शृंगार से उनके चक्षु चौंधिया जाते हैं। इस नाटक में शृंगार रस है और होना भी चाहिये था, परन्तु यह उपर्युक्त दोषों से रहित है। यदि प्राकृतिक सौंदर्य का रसास्वादन करना हो, तो ऊषा के विरह जनित वाक्यों को पढ़ जाइये। प्रेमके कारण ऊषा का मन उद्विग्न तो होता है, परन्तु समुद्र के समान उसमें गम्भीरता विद्यमान रहती है।

नाटक में हास्यरस है, क्योंकि बिना इसके नाटक का स्टेज पर पास होना असम्भव है। कोई मनुष्य भी जीवन में सदा गम्भीर विचारों और उच्च भावों में निमग्न नहीं रह सकता। उसके लिये अनिवार्य होता है कि समय समय पर वह भिन्न रसों का आस्वादन करे। इस नाटक में वह गंदा मज़ाक और हंसी दिल्लगी नहीं है जिसको हम अपनी सन्तान और स्त्रियों को दिखाते हुए झिझकें, बल्कि हंसी उस कोटि की है जिस पर अनपढ़ों की अपेक्षा पढ़े लिखों को अधिक श्रद्धा होनी चाहिये। वह हंसी दिल्लगी कोरे मनोरंजन के निमित्त नहीं है। उसका गूढ़ अर्थ भी है। उसके बहानेसे देशके पाखंडी साधुओं और महन्तों की अविद्या, अन्धविश्वास, कपट और छल का वास्तविक चित्र खींचा गया है। संकेतसे यह भी प्रकट करदिया गया है कि यदि हिन्दू जाति के नेता चाहें तो उनमें प्रचार करके उनको जात्युत्थान और देशोन्नति की ओर लगा सकते हैं।

शान्तिरस का उदाहरण श्रीकृष्ण जी के उन उत्तरों से मिलता है जो उन्होंने बलराम, रुक्मिणी और रुक्मवती को दिए हैं।

चित्रलेखा का आकाशमार्ग से उड़ना, अनिरुद्ध-भवन में प्रवेश करना और अनिरुद्ध को ऊषा के राजभवन में लाना अद्भुत रसका उदाहरण है।

यद्यपि नाटक के दोष तो नाट्यकार ही समझ सकता है, परन्तु इस विषय की कुछ बातों पर दर्शकों को भी मत देने का अधिकार है। इस दृष्टि से विचार किया जाये तो नाटक में कुछ त्रुटियाँ हैं। यह नाटक रंगभूमि पर खेले जाने के निमित्त रचा गया है, परन्तु यह लम्बा इतना है कि दर्शकों की जागरण-शक्ति को थकानेवाला है। माधोदास की बातचीत साधारण दर्शक वृन्द की समझ से बाहर है। जिन्हें अब भी हिन्दी भाषा जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, उनके लिए तो 'शोणित-पुराधीश' और 'मजूषा' आदि शब्दों का समझना कठिना होगा।

नाटक दृश्य काव्य है। वह सीन सीनरीसे लोगों में पास होता है। यदि ऐक्टर अच्छा गाते हों, शुद्ध उच्चारण करते हों और भावों को ठीक प्रकार से दिखलाते हों, तो साधारण नाटक भी दर्शकों की दृष्टि में अच्छा जचेगा। पर नाटक की उत्तमता की कसौटी यह नहीं है। उत्तम कोटिका नाटक वही है जिसमें उच्च विचारों और उन्नत भावों का समावेश हो, और मनुष्य के हृदय में जिनके पढ़ने से एक बार तो उथल पुथल मच जाय और उसकी आंखों के सन्मुख आदर्श के पालन और पाप के दुष्परिणाम का पूरा पूरा चित्र खिंचजाय।

हर्ष की बात है कि लेखक ने इस नाटक के लिखने मे बहुत अंशों में सफलता प्राप्त की है।

हमें आशा है कि भविष्य में भी ऐसे ही नाटक स्टेज पर आकर जनता क ज्ञान की वृद्धि करेंगे और हिन्दी साहित्य का भंडार भरेंगे।

बरेली। }
१८-६-१९२५, }

छैलबिहारी कपूर बी० ए०।

* ऊषा–अनिरुद्ध *

नाटक
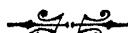
मङ्गलाचरण
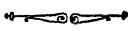
[इस दृश्य को नाटक की प्रस्तावना समझिए]

गायन

नट नटी आदि—

जय गणपति, गणनायक, सुख के सदन सुखदायक।
एकदन्त दयावन्त सोहे सिन्दूर, मूषक सवारी,
भव भय हारी, विघनविदारी, कष्टनिवारी ॥ जय० ॥

नट—जय हरिहर सुख के सदन दुःख विनाशन-हार ।
एक रूप से विश्व के, पोषण पालन हार ॥
रंगभूमि पै आपके, गुणगाने हैं आज ।
शक्तिपते, वह शक्ति दो, सुफल होंय सब काज ॥

नटी—नाथ, आजतो आपने बड़ा विचित्र ध्यान किया है, हरि और हर दोनों का एक ही प्रार्थना में गुणगान किया है !

नट—प्रिये, यह भारत का दुर्भाग्य है जो सम्प्रदायों के झगड़े इस देश की उन्नति नहीं होने देते । शैवलोग वैष्णवों के द्वेषी हैं तो गणपति के उपासक शाक्त धर्म की निन्दा करते हैं । सनातन-धर्मियों द्वारा जैन धर्मियोंका हास्य और जैनधर्मियों द्वारा सनातन-धर्मियों का उपहास ! हाय ! जाति का इतना ह्रास ! सर्वनाश, सर्वनाश !

नटी—तो क्या आज जाति-संगठन का ही नाटक दिखाना है ?

नट—प्रिये, यह काम तो देश की वेदी पर बलिदान होनेवाले उन धर्म वीरों का है, जो सर्वस्व अर्पण करके हिन्दू-संगठन के लिये कटिबद्ध हुए हैं । हमें इतने बड़े मैदान में नहीं जाना है ।

नटी—[आश्चर्य से] तो क्या बताना है ?

नट—केवल शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के झगड़ों की चर्चा उठाना है । धर्म की आड़ में परस्पर लड़नेवाले धर्माचार्यों को प्रेम और एकता के मार्ग पर लाना है:—

जो सोते हैं उन्हें अपने मधुर स्वर से जगायेंगे।
विरोधों को मिटाकर, प्रेम की वंशी बजायेंगे॥

नटी–तो आज के नाटक का प्रारम्भ कल्पना ही से होगा या किसी इतिहास अथवा पुराण से ?

नट–हमारे महर्षियों ने अपने पवित्र ग्रन्थों में कोई बात नहीं छोड़ी है। शिव और विष्णु भक्तों के चरित्र अक्सर पुराणों में पाये जाते हैं। तुम जिसे कहो उसे करके दिखायें।

नटी–मेरे विचार से तो शिव के भक्त शोणितपुर–पति बाणासुर और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पौत्र श्री अनिरुद्ध कुमार का चरित्र दिखाइये।

नट–तो यह कहो न कि "ऊषा अनिरुद्ध" का नाटक रचाइये!

नटी–हां, इसी विचारको काममें लाइये। एक ओर प्रेमसागर में अपने दर्शकों को नहलाइये और दूसरी ओर सम्प्रदाय के झगड़ों की बुराइयां बताकर, ऐक्य और संगठन के झंडे के नीचे अपने देश और अपनी जाति को लाइये:—

उसी देश को मिलता मान, धर्म कर्म जिसका बलवान।
हम अनेक हैं एक समान, घर घर होता हो यह गान॥

बाहर वाले जानलें, घर वालों की टेक।
बाहरवालों के लिये, घर वाले सब एक॥

❁ गाना ❁

बालिकायें—

हरीहर दोनों एक समान।

हरिद्वार या हरद्वार हो, द्वार एक ही जान।
एक रूप में राजें दोनों, गावें वेद पुरान॥
पालन पोषण करते हैं जो, एक विष्णु भगवान।
वही रुद्र बन संहारे हैं, जानें सन्त महान॥
हरिहरात्मक रूप भजें जो, पावे पद निर्वान।
भेद छोड़ जो जपें प्रभू को, वही भक्त सज्ञान॥

श्री

अंक पहला

दृश्य पहला

(स्थान—कैलास)

[गिरि शिखर पर शिव-पार्वती का दिखाई देना, दूसरी ओर वाणासुर का शिवजी की पिंडी के सम्मुख एकाग्र भाव से खड़े हुए तप करते दिखाई देना]

पार्वती—[स्वगत] देख तपस्या भक्तकी, डोल उठा कैलास ।
तपसी ने तप डोर से खींचे उमा-निवास ॥
अबतक आता रहा है, स्वामी के ढिंग दास ।
किंतु आज स्वामी चले निज सेवक के पास ॥

शिव–प्यारी पार्वती देखरही हो ? इसी वीर तपस्वी के तप के कारण आज वृक्षों से वायु का प्रवाह मंद है, नदी का जल बंद

है। मानसरोवर का शीतल जल मानरहित होकर खौल रहा है, कैलास ही नहीं सारा संसार डोल रहा है।

पार्वती—कैलासपते! मुझे तो इस बाणासुर पर बड़ी दया आती है, इसकी घोर तपस्या अब नहीं देखी जाती है। चलिये और इसकी मनोकामना पूर्ण कीजिये, इच्छानुसार वरदान दीजिये।

शिव—प्रिये, अभी तपस्या तो पूर्ण होने दीजिये। यह एक नहीं दो दो वरदान की इच्छा रखता है।

पार्वती—[आश्चर्य से] हैं! दो वरदान? दो वरदान कौन से?

शिव—संतान और अजेयशक्ति का दान। परन्तु इसके लिये ये दोनों ही बातें कठिन हैं।

पार्वती—क्यों?

शिव—इसलिए कि संतान का योग तो इसके भाग्य में ही नहीं है, और असुरोंको अजेयता का वर देना देवताओं की शक्ति को क्षीण करदेना है।

पार्वती—यदि वरदान कठिन न होते तो ऐसी उग्र तपस्या ही क्यों करनी पड़ती?

शिव—इस उग्र तपस्या ही के कारण तो मैं इसे वर देने को तैयार हूं। परन्तु एक ही—अजेयशक्ति ही का—वर दे सकूंगा। दूसरा देने को लाचार हूं।

पार्वती—क्यों?

शिव—इसलिये कि संतान का वरदेना मुझे शोभा नहीं देता। वह तो ब्रह्मा के लिए ही ज्यादा उपयुक्त है।

पार्वती–इसमें ब्रह्मा जी की क्या आवश्यकता है? यदि आप आज्ञा दें तो दूसरा वर मैं दे सकती हूं। परन्तु मेरे वर से इसे पुत्र नहीं पुत्री प्राप्त होसकती है।

शिव–पुत्री ही सही, पुत्री प्राप्त होने पर भी इस की तपस्या समाप्त होसकती है।

पार्वती–ऐसा है तो चलिये और भक्त की इच्छा पूर्ण कीजिए।

(शिव-पार्वती का कैलास से प्रस्थान और शिव की पिंडी में प्रवेश)

बाणासुर— (प्रार्थना)

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहिमाम्।
मन्मथेश्वर,मन्मथेश्वर, मन्मथेश्वर त्राहिमाम्॥
गंगधारी तापहारी सौख्यकारी पहिमाम्।
कष्ट गंजन भय विभञ्जन इष्टदानं देहिमाम्॥

(प्रार्थना की समाप्ति पर शिवजी की पिंडी का फटना और उसमें शिव-पार्वती का दिखाई देना)

शिव-पार्वती–[एक साथ] वरंब्रूहि, वरंब्रूहि, वरंब्रूहि।

बाणासुर–[आंखें खोलकर] जय, जय, भूतभावन, शंकर महादेव की जय:–

जिनके भ्रुकुटि-विलास में, विश्व सकल लय होय।
आये जन के सामने, गिरिजा शंकर सोय॥
पूर्ण तपस्या होगई, इस सेवक की आज।
वर देने को स्वयं ही, आये श्री महाराज॥

शिव–माँगो, भक्तराज माँगो! क्या इच्छा है?

बाणासुर–प्रभो, आपतो अंतर्यामी हैं, घट घट की जानने वाले हैं:—

भक्तों को देते रहे, सदा आप वरदान ।
है उदारता आपकी विश्व विदित भगवान ।
मनवाँछित वर दीजिये, हो जनका कल्यान ।
सेवक सर्वप्रकार से, पड़ा चरण में आन ॥

[चरणों मे गिर जाता है]

शिव-उठो, भक्तराज उठो । मैं वरदान देता हूं कि संग्राम में तुम्हे कोई मनुष्य नहीं जीत सकेगा ।

वाणासुर-[उठकर प्रसन्नता से] जय, जय, त्रिपुरारी की जय !

पार्वती-कहो, भक्तराज ! अब और क्या इच्छा है ?

वाणासुर-मातेश्वरी, अभी अभी वरंब्रूहि का वाक्य आपने और मेरे इष्टदेव महेश्वर ने साथ साथ कहा था । उन्होंने तो वरप्रदान करदिया, अब आपसे एक वरदान की इच्छा रखता हूं ?

पार्वती-भक्तराज, मैंने तो जब तुम समाधि में थे तभी संकल्प करलिया था कि तुम्हें एक पुत्री का वरदान दूंगी । अतएव मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे यहां एक ऐसी कन्या का जन्म होगा जो सतियों में श्रेष्ठ, पतिव्रताओं में अग्रणी, सुन्दरता में अद्वितीय और संसार में माननीय होगी । जिसका उज्वल चरित्र सुनकर नारिजाति शिक्षा पायेगी और जो उषा काल में जन्म लेने के कारण ऊषा के नाम से पुकारी जायगी ।

वाणासुर—धन्य माहेश्वरी ।

शिव-ले मैं अब देता तुझे, भक्त ध्वजा यह दान ।
तेरी जय का रहेगी, यह सर्वदा निशान ॥

(ध्वजा देना)

वाणासुर-जय, जय, जय !

[शिवजी के हाथ में से ध्वजा लेना और पर्दा गिरना]

—०—

दूसरा दृश्य

(स्थान रास्ता)

[नारद का गाते हुए प्रवेश]

❀ गाना ❀

नारद-श्रीरामकृष्ण गोपाल हरीहर केशव माधव गिरधारी ।
देवकीनन्दन कंसनिकन्दन खलदल गञ्जन असुरारी ॥
मनमोहन सोहन भय भंजन नन्द सुवन करुणाकारी ।
यशुमतिलाल दयाल वेणुधर विपतिविदारण अवतारी ॥

नारायण, नारायण,

शिवजी का नाम है भोलानाथ, इसीलिये तो समय समय पर वे अपने भोलेपन को प्रकट करडालते हैं। इन दिनों भी भोले बाबा भूले हैं। तभी तो बाणासुर को अजेय शक्ति प्रदान की है। यह नहीं विचार किया कि इन असुरों के दल को बढ़ाना देवताओ को कष्ट पहुंचाना है ।

पर हमारे भोले बाबा को इसकी क्या परवाह ! उन्होंने तो इस समय आसुरी शक्ति ही को बढ़ाया है, मानो नाग को दूध पिलाया है ।

भस्मासुर को वरदान देने की बात अभी बहुत पुरानी नही हुई है। रावणासुर पर कृपा करने की कथा तो बच्चा २ तक जानता है। अब नया तूफान उठने का सामान यह बाणासुर का वरदान है। हमें तो मालूम होता है कि यह वरदान पानेवाला बलवान बाणासुर एक बार सारे संसार को हिलायेगा और

कैलासी बाबा की आड़ में वैष्णवों पर गज़ब ढायगा। उस सब का परिणाम क्या होगा? शैव और वैष्णव सम्प्रदाय में झगड़े की एक जबर दस्त आंधी आयेगी और इस देशकी ऐक्य के सूत्र में बंधी हुई जाति के टुकड़े २ करायेगी। हाय, समय की गति न जाने तू क्या करके दिखायगी।

कष्ट पर और कष्ट यह है कि श्री पार्वती जी ने भी असुर को एक पुत्री देने की कृपा दिखलाई है। इस प्रकार उन्होंने भी उसकी ताक़त बढ़ाई है।

खैर जी जैसा कुछ होगा देखा जायगा। नारायण, नारायण,

(ठहर कर)

चल नारद, बाणासुर की सभा में चलकर देख तो सही, पुत्री के जन्मोत्सव की कैसी धूमधाम है। अपने नारायण को तो अपने आनन्द से काम है। नारायण, नारायण। (चले जाना)

—०—

॥ तीसरा दृश्य ॥

(स्थान छावनी)

[चारों ओर से सशस्त्र सिपाहियों के बीच में विष्णुदास नामक एक बूढे वैष्णव का खड़े हुए दिखाई देना और बाणासुर का उसपर गरमाना।]

बाणासुर—बोल, बोल, मेरे बाणों के लक्ष, मेरी खड्ग के निशाने, मेरे क्रोध की शान्ति, मेरी क्षुधा के भोजन, तू विष्णु की भक्ति नहीं छोड़ेगा?

विष्णुदास–विष्णु की भक्ति ? छोड़ दूंगा। कब?–जब इस संसार में यह शरीर नहीं रहेगा, जब इस शरीर में यह हृदय नहीं रहेगा, जब इस हृदय में यह श्वास नहीं रहेगी, जब इस श्वास में धारणा नहीं रहेगी, और जब इस धारणा में गोविंद नहीं रहेंगे !

वाणासुर–बकवादी भक्त, तेरी बकवाद इस शिवराज्य में नहीं चलेगी। वैष्णव धर्म की टहनी इस शैव सम्प्रदाय के शासन में कभी नहीं फूले फलेगी—

दबादूंगा, कुचलदूंगा, निगल डालूंगा चुटकी में।
तुझ ऐसे तुच्छ भुनगों को मसल डालूंगा चुटकी मे ॥

विष्णुदास–मसल डाल ! मुझे मसल डाल या कुचल डाल इसकी परवाह नहीं। परन्तु ज़ालिम राजा, यह तेरी प्रजा का एक बूढ़ा ब्राह्मण--अपनी बुढ़ापे की आवाज़ में शेर की तरह गरज कर--तुझे यह चेतावनी देता है कि वैष्णव सम्प्रदाय का अपमान न कर, नहीं तो:—

आयेंगे भूकम्प तेरे राज में, गाज पड़जायेगी इस साम्राज में।
उतने संकट सिर पे आयेंगे तेरे, जितने हीरे हैं तेरे इस ताजमें॥

वाणासुर–तेरी इन धमकियों से मैं डरनेवाला नहीं हूं ! अगर अपनी ज़िन्दगी चाहता है तो शैव सम्प्रदाय में आजा। अपने विष्णु की भक्ति छोड़दे।

विष्णुदास–फिर वही बात, फिर वही बात:-

सूर्य चाहे अपनी गर्मी छोड़ दे, शेष चाहे अपनी शक्ती छोड़दे।
पर नहींहोगा यह तीनों कालमें, विष्णु सेवक विष्णुभक्ती छोड़दे ॥

वाणासुर–तो क्या तुझे यह नहीं मालूम कि मैं शिव का सर्वोपरि भक्त हूं ?

विष्णुदास–मालूम है, मालूम है, कि तूने शिव की घोर तपस्या करके अजेय वर प्राप्त किया है, परन्तु—

व्यर्थ है वरदान,जब अभिमान तनमे आगया ।
फिर कहाँ है तेज जब अज्ञान तनमें आगया ॥
रूप बनजायेगा वह वरदान ही अब शापका ।
फूटनेवाला है ओ पापी तेरा घट पाप का ॥

वाणासुर–देख मैं एक बार फिर कहता हूं कि शिव भक्त का आसन न हिला। नहीं तो, तू क्या सारे संसार के वैष्णवों को इस का फल भोगना होगा।

विष्णुदास–अबतक तूने कौनसी कसर छोड़ी है जो आगे के लिये ऐसी धमकी दे रहा है। तिलक हमारा तूने नष्ट किया, लाज, पत, सब तूने हमारी लेली। और अब हमारी गंध तक भी तुझे नहीं भाती ? अरे–

नष्ट जब होता है दाना, खेत है उगता तभी ।
काटते हैं जबकि केला, फूलता फलता तभी ॥
त्योंही वैष्णव संगठन, दबकर नया रङ्ग लायगा ।
यह वह झंडा है, जो सारे देश में फहरायगा ॥

वाणासुर–मौन होजा !

विष्णुदास–कभी नहीं !

वाणासुर–(खड्ग निकाल कर) यह खड्ग देख !

विष्णुदास–टूट जायगी।

वाणासुर—हाँ, तेरे बदन पर !

विष्णुदास—नहीं, अन्यायी शासन पर !

वाणासुर—इसमें गरमी है ।

विष्णुदास—लेकिन निर्दोष का लहू इसे ठंडी करदेगा ।

वाणासुर—मेरा क्रोध फिर गरमी भरेगा ।

विष्णुदास—तो ग़रीबों की आह भस्म भी करदेगी:-

सताना बेगुनाहों का कहीं बरबाद होता है ।
सताताहै किसीको जो वह खुदही आप रोता है॥
सदा खाता है मीठेफल जो मीठे आम बोता है ।
जो कीकर को लगाता है, वही कांटोमें सोता है ॥

वाणासुर—यह आन बान ?

विष्णुदास—धर्म के कारण !

वाणासुर—ऐसा कठोर उत्तर ?

विष्णुदास—विष्णु भगवान के बल पर !

वाणासुर—देखना है तेरे विष्णु भगवान को !

विष्णुदास—[उपेक्षा से हंसकर] अरे तू ! तू विष्णुभगवान को क्या देखेगा ! विष्णुभगवान को वह देखते हैं जिनके पास ज्ञान के नेत्र, प्रेम का हृदय, विद्या की रोशनी और धर्म की धारणा होती है :—

देह जाये, शीश जाये, प्राण जाये ग़म नहीं ।
धमकियों से इष्ट अपना, छोड़दे वह हम नहीं ॥
एक क्या सब पन्थ का, सिर धर्म पर तैयार है ।
बचा २ वैष्णवों का, विष्णु पर बलिहार है ॥

विष्णुदास-है; पर हमारा पन्थ नहीं है। जिस पन्थ में हमने जन्म लिया, जिस पन्थ की गोद में हम पले, जिस पन्थ की कृपा से हम खड़े हुए, उसी पन्थ पर अंत में इस शरीर को छोड़देंगे, परन्तु पराया पन्थ न ग्रहण किया है और न ग्रहण करेंगे:—

अन्य पन्थों से न हमको प्यार है ।
पन्थ पर अपने ही बस आधारहै ॥
वैष्णवों का विष्णु जीवन सार है ।
विष्णु-पद ही अपना मुक्ती-द्वार है ॥

बाणासुर—तो जा, विष्णु के पुजारी, अपने विष्णु के द्वार पर जाने के लिये तैयार होजा ।

विष्णुदास—तय्यार है । विष्णु के नाम पर बलिदान होने के लिए यह विष्णुदास तय्यार है, परन्तु यह याद रहे

रक्तसे लाखों बनेंगे विष्णु-भक्त,
विष्णु-भक्तों से धरा भर जायगी ।
ग्रीष्म यह धर कर वसन्ती रूपको,
धर्म का बिरवा हरा कर जायगी ॥

बाणासुर—अगर मैं मैं हूं तो इस वैष्णव-धर्म के बिरवे को जड़ से उखाड़ डालूंगा ।

विष्णुदास—और, अगर मेरी भक्ति में शक्ति है तो यह बिरवा उखड़ने की अपेक्षा तेरे ही महल में लग जायगा । कोई विष्णु का भक्त, कोई विष्णु का सम्बन्धी तेरी पुत्री को अपनी पत्नी बनायगा :—

सच्चे हैं अगर विष्णु तो सच्चा यह वचन हो,
तेरे ही घर में न्याय से अन्याय दमन हो ।

वैष्णव कुमार, शैव कुमारी को वरे जब,
इस वृद्ध की आत्मा को तभी चैन अमन हो ॥

बाणासुर-(बाण दिखाकर) लो जा, सदा के लिये मौन होजा

[बाण मार देता है]

विष्णुदास-आह ! [बाण लगने से गिरजाना] धर्म पालन हो-गया । लेना, लेना, वैष्णव सम्प्रदाय के उपासको, विष्णुदास ब्राह्मण के बेटे चिरञ्जीवी कृष्णदास, इस अत्याचारी से मेरी हत्या का बदला लेना । (मृत्यु)

कृष्णदास-(आकर) लूंगा, लूंगा, इस हत्याकारी से बदला अवश्य लूंगा । धर्मवेदी पर बलिदान होने वाले बूढ़े पिता, तुम सुख के साथ विष्णु-लोक को जाओ । इस अत्याचार का समाचार भगवान विष्णु तक पहुंचाओ । पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तुम सब इस हत्या के साक्षी हो । मैं अगर विष्णुदास का पुत्र हू ; मैं अगर वैष्णव सम्प्रदाय की रज हूं, तो पिता की इस लाश के पास खड़े होकर प्रतिज्ञा करता हूं कि शैव और वैष्णवों का झगड़ा मिटा दूंगा । इस अशान्ति का शान्ति के साथ बदला लूंगा ।

बाणासुर-साँप के बच्चे, चुप होजा । सिपाहियो, इसे भी करलो गिरफ़्तार ।

कितने ही वैष्णव-(आकर) बस खबरदार !

[अचानक इन वैष्णवों को देखकर बाणासुर और सिपाहियों का आश्चर्य में आजाना कि हमारे राज्य शोणितपुर में इतने लोग आज वैष्णव होगये !]

दृश्य चौथा

—(स्थान रास्ता)—

[कृष्णदास का चन्द वैष्णवों के साथ आना]

—:०:—

कृष्णदास—[आवेश पूर्वक] संगठन, संगठन, संगठन करो। बिना संगठन किए अब काम नहीं चलेगा। शैव लोग आज क्यों बढ़े हुये हैं जानते हो ?

एक वैष्णव—जानते हैं, उनकी शक्ति इसलिए बढ़ी हुई है कि उनमें संगठन है।

दूसरा वैष्णव—हरहर महादेव की पुकार होते ही दल के दल घरों से निकल आते है।

तीसरा वैष्णव—इन शैवों में धर्मान्धता बहुत पाई जाती है।

चौथा वैष्णव—और सब से बड़ी बात तो यह है कि राजा भी उनका साथी है।

कृष्णदास—इसीलिये तो मेरी राय है कि संगठन करो। वैष्णव धर्म के माननेवालो, अपने इष्टदेव पर श्रद्धा रखनेवालो तुमने कभी यह भी सोचा है कि तुम क्यों कमजोर हो ? तुम सब एक अच्छे जानदार, सुगन्धि से परिपूर्ण, लहकते और महकते हुये पुष्प हो, परन्तु कमी इतनी है कि एक तागे में पिरोये हुए नहीं हो :—

बिखरे पुष्पों को नहीं, मिलता वह सुस्थान।
जैसा माला के सुमन, पाते हैं सम्मान॥

एक वैष्णव—जाति की सेवा के वास्ते जाति का बच्चा २ एक होजाय।

दूसरा वैष्णव-एक वैष्णव की हानि सारे सम्प्रदाय की हानि समझी जाय।

तीसरा वैष्णव—एक की पुकार पर एक हजार सहायकों का झुंड सहायता को आजाय।

चौथा वैष्णव—कोई अगर दुष्टता की दृष्टिसे वैष्णवों की ओर एक अंगुली भी उठाय तो उसका सारा हाथ मरोड़ दिया जाय।

कृष्णदास—हाँ, यही तो संगठन है। इसी संगठन को मैं आज चाहता हूँ। मेरी मंशा यह नहीं है कि तुम दूसरों पर प्रहार करो, दूसरों को मारने के लिये उठ खड़े हो, बल्कि दूसरे तुमको गाजर मूली की तरह तोड़ न सकें, ऐसी शक्ति उत्पन्न करो। दूसरों को बतादो कि हम भी शरीरवाले हैं। हमारे शरीर मे भी मनुष्यता का रुधिर है। और हमारे उस रुधिर मे भी गरमी है:—

खिलौने खांड के होकर, नहीं जग में बने हैं हम।
चबाना जिनका मुश्किल है, वह लोहे के चने हैं हम॥

एक वैष्णव—परन्तु.........

कृष्णदास—हाँ, हाँ, कहो!!

एक वैष्णव—एक बात है। शैव सम्प्रदाय के मुकाबले में वैष्णव-संगठन खड़ा करना मनुष्य जाति का उदार उद्देश्य नहीं है। इससे मनुष्य जाति मात्र की एकता में बाधा पड़ती है।

कृष्णदास—ठीक है। परन्तु दलबन्दी तो जगत्कर्ता ही ने आदि काल से रक्खी है। नहीं तो चौरासी लाख योनियोंके बनाने की क्या जुरूरत थी? एक ही मनुष्य योनि निर्माण कीजाती!

एक वैष्णव—हां समझा, इससे आप का मतलब शायद यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों में स्वतन्त्र है।

कृष्णदास—हां। अब रही यह बात कि इस संगठन से परस्पर में द्वेष पड़ता है; सो यह बात भी नहीं है।

एक वैष्णव—सो किस प्रकार ?

कृष्णदास—सुनो और समझो, प्रीति बराबर वालों में होती है, छोटे-बड़ों में नहीं होती। बड़ी मछली हमेशा छोटी मछली को खा जाया करती है। बड़ी चिड़िया हमेशा छोटी चिड़िया को सताया करती है। परन्तु जहां दो बराबर की शक्तियाँ होंगी, वहां एक से दूसरी डरती रहेगी; और इसी कारण परस्पर में लड़ाई नहीं होगी।

तीसरा वैष्णव—तब तो संगठन एकता का मूल है।

कृष्णदास—हाँ, इसीलिये तो मेरा कहना है कि संगठन करो।

एक वैष्णव—तो यह संगठन इस नये युगकी नई कल्पना है।

कृष्णदास—नहीं, प्राचीन रचना है। राक्षसों के संगठन ही के कारण रावण ने सुरपति तक को परास्त कर डाला था। सूर्य, चन्द्र, वरुण, कुवेर और यमराज तक को बंदीग्रह में डाला था। उसी रावण को बानरों के संगठन द्वारा श्री रघुनाथ जी ने आन की आन में हरा दिया। इस प्रकार संगठनकी शक्ति का चमत्कार सारे संसार को दिखा दिया।

नाश उसका तब हुआ, जब संगठन जाता रहा।
ठनगई भाई से तो, सब बांकपन जाता रहा॥

एक वैष्णव—बस, निश्चित हो गया कि संगठन वैष्णवों की आन है।

दूसरा वैष्णव—संगठन जाति का प्राण है।

तीसरा वैष्णव—संगठन मनुष्य का आधार है।

चौथा वैष्णव—संगठन के बिना सृष्टि का संहार है।

कृष्णदास—संगठन का तत्त्व समझना हो तो जल के बिन्दुओं से पूछो। एक एक बिन्दु मिलकर जब नदी बनजाती है तो बड़े से बड़े पर्वत को बहादेती है। संगठन की शक्ति जानना हो तो आग की चिनगारियों से पूछो। एक एक चिनगारी मिलकर जब प्रचण्ड ज्वाला बनजाती है तो बड़े से बड़े राजमहल को जलादेती है, संगठनका बल देखना हो तो प्रकाश की किरणोंसे पूछो। एक एक किरण मिलकर जब तीव्र धूप का स्वरूप बनजाती है तो ऊंचे से ऊंचे हिमशिखर को पिघला देती है।

एक वैष्णव—श्रीमान् का कथन सत्य है।

कृष्णदास—बोलो, अपने बच्चों की रक्षा करना मंजूर है?

सब—हाँ,

कृष्णदास—अपनी माताओं और बहिनों की रक्षा करना मंजूर है?

सब—हाँ।

कृष्णदास—तो आओ भाइयो, धर्म के नाते, जाति के नाते, और देशके नाते, पांव जमाकर, सिर उठाकर, छाती खोलकर, राक्षसों की शक्ति को चकनाचूर करने के लिये शोणितपुर के मस्तक पर संगठन की शहनाई बजाओ, और वैष्णव दल का विजयनाद सुनाओ——

करो तुम संगठन ऐसा कि जिससे जगमें विस्मय हो।
करो तुम संगठन ऐसा कि जिससे जाति निर्भय हो॥

अनाचारी के अत्याचार की जड़ मूल से क्षय हो ।
ज़मीं से आसमाँतक एक वैष्णव धर्म की जय हो ॥

[पहले से] जाओ तुम वैष्णव समाज को क़ायम कराओ । [दूसरे स] तुम शैव सम्प्रदायके आदमियोंके गलेमें विष्णु-कंठी पहनाने को रचना रचाओ । [तीसरे से] तुम वैष्णव दल के अखाड़े खुलवाओ, [चौथे से] और तुम प्रचार के काम में लग जाओ :—

ऐसा प्रचार हो कि जगादे जहान को ।
त्रैलोक्य सारा जानले वैष्णव की शान को ॥
प्राणों के साथ रखना है इस आन बान को ।
इस आन बान पर ही मिटाना है प्रान को ॥

❀ गाना ❀

विश्व का प्यारा है वह, जिसको है प्यारा संगठन ।
क़ौम की क़िस्मत का है ऊँचा सितारा संगठन ॥
निर्धनों का धन है निर्बल का है बल, निर्गुण का गुण ।
बेबसों का बस है, बेचारों का चारा संगठन ॥
तीर्थ की पदवी से, होजाती है पदवी तीर्थराज ।
करती है जब जमुना से गंगाजी की धारा संगठन ॥
गर तुम्हें जीना हो जग में, तो यह रक्खो मन्त्र याद ।
ज़िन्दगी का एक ही बस है सहारा संगठन ॥
संगठन के संग ठन जाती है जिस इंसान की ।
उसका करदेता है दुनिया से किनारा संगठन ॥
इन्द्रियों का संगठन रखता है जैसे जिस्म को ।
त्यों ही रक्खेगा हमें बस यह हमारा संगठन ॥

पांचवां दृश्य

(वाणासुर का दरबार)

["ऊषा" का जन्म होचुका है, उसके "जन्मोत्सव" की धूम धाम होरही है]

—:०:—

❀ गाना ❀

गायिकायें—

हाँ गाओ बधाई, कन्या आई, राजमहल में आज ।
हिलमिल के चलो सब नारी, हाथन में लै लै थारी ।
सन्तान की घड़ी है, खुशी बढ़ी चढ़ी है ।
साजो साज समाज । हां—गाओ बधाई० ॥ १ ॥
पुर में है आज आह्लाद, पाया है उमा का प्रसाद ।
सब देउ मुबारिकबाद । हाँ—गाओ बधाई० ॥ २ ॥

एक दर्बारी—[आगे बढ़कर]

घड़ी आजकी धन्य है, भरी राज की गोद ।
कन्या जन्मी महल में, घर घर छाया मोद ॥

दूसरा दर्बारी:—

नभ पृथ्वी सब गा रहे, विविध वधाई आन ।
चन्द्रकला जैसी बढ़े, राजसुता की शान ॥

वाणासुर-(स्वगत) अहा ! कन्या, कन्या ! कितना प्यारा शब्द है ! यह शब्द आजही नहीं उसी दिन से प्यारा मालूम हो रहा है, जिसदिन कि श्री पार्वती जी ने इसका प्रसाद दिया था ।

एक दर्बारी—सत्य है श्री महाराज । परन्तु .....

वाणासुर—हाँ, कहो ।

एक दर्बारी—आजका आनन्द चौगुना आनन्द होजाता यदि पुत्री के स्थान में पुत्र जन्म का समाचार आता ।

वाणासुर—पुत्र हो या पुत्री, दोनोंही आनन्द की वस्तु हैं । जो लोग पुत्री की अपेक्षा पुत्र को ज्यादा प्यार की दृष्टि से देखते हैं मेरी राय में वे भूल करते हैं :—

एक वृक्ष की दो डाले हैं, एक डाल के दो वर हैं ।
पुत्री हो या पुत्र जगतमें, दोनों एक बराबर हैं ॥

दूसरा दर्बारी—निःसन्देह महाराज के विचार बड़े उत्तम हैं ।

वाणासुर—जिस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम के लिये विद्या, वाण-प्रस्थाश्रम के लिये तीर्थ-यात्रा और सन्यास के लिये चित्त की वृत्तियों के निरोध का विधान है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम के लिये भी सन्तानोत्पत्ति का आनन्द ही प्रधान है । वे लोग भूलते हैं जो कन्या से पुत्र को अधिक आनन्द की वस्तु समझते हैं । मैं पूछता हूं, क्या कन्या शब्द सन्तान की परिभाषा के अन्दर नहीं आता है ?—

एक देह के नयन दो, होते ज्यों शृंगार ।
उसीतरह सुत या सुता, हैं दोनों इकसार ॥

एक दर्बारी—श्री महाराज की बात काटना अनुचित है, परन्तु एक बात कहे बिना जी नहीं मानता ?

वाणासुर—हां, हां, कहो, वह बात भी कह डालो ।

एक दर्बारी—कन्या फिर भी पराई होती है ।

बाणासुर—यह ठीक है, परन्तु महाशय, पुत्र क्या पराया नहीं होता है ? पुत्र की दृष्टि सदैव पिता के धन पर रहती है ! पिता के राज पर, पिता के ताजपर, पिता के मानपर, पिता की शान पर रहती है । परन्तु पुत्री ! पुत्री केवल प्रेम ही की चाहना रखती है । प्रेमही की निस्वार्थ कामना रखती है :-

बेटे की भांति वह न सताती है बाप को ।
होके बड़ी न आँख दिखाती है बाप को ॥
जीवन में भुलाती है नहीं याद बापकी ।
सुसराल में भी रखती है मर्याद बापकी ॥

दूसरा दर्बारी—श्री महाराज ठीक कह रहे हैं ।

बाणासुर— अश्वपति के नाम को विख्यात करने वाली सावित्री कौन थी ?

सब दर्बारी—कन्या !

बाणासुर—राजर्षि जनक के नाम को यश देनेवाली जानकी कौन थी ?

सब दर्बारी—कन्या !

बाणासुर—गिरराज हिमाचल की शान ऊंची करनेवाली कौन है ?

सब०—भगवती पार्वती ।

बाणासुर—नरराज द्रुपद का नाम अमर करनेवाली कौन है ?

सब०—महारानी द्रौपदी ।

बाणासुर—तो बस समझलो कि कन्या की पदवी कितनी ऊंची है । जिस जाति ने नारी का आदर नहीं किया है वह कभी ऊपर को नहीं उठी है । यह सारी सृष्टि ही नारी रूप है । भगवती

पार्वती के बिना महेश्वर की महिमा असार है। पृथ्वी के बिना जल बेकार है। ज्योति के बिना नेत्रमें अंधकार है। विद्या के बिना बड़े से बड़ा मनुष्य गंवार है।–

नारि जाति ही सृष्टि में, होती गुण–भाण्डार।
इसीलिये तो सृष्टि भी, कहलाती है नार॥

दूसरा दर्बारी–यथार्थ है।

वाणासुर–पुरुष स्वभावतः इतना स्वार्थी है कि एकबार पाणिग्रहण करलेने पर भी दूसरा विवाह करलेता है। किंतु नारी अपने पति का शव जल जाने के बाद भी जीवन पर्यन्त विवाह करना तो एक ओर किसी दूसरे पुरुष का विचार तक मन में लाना घोर पाप समझती हैं। पुरुष ऐसा अधम है कि वह प्रत्येक समय नारी को अपने आमोद की सामग्री समझता है। परन्तु नारी पतित अवस्था में रहने पर भी पुरुष की मनोवृत्ति का संभालना अपना कर्त्तव्य समझती हैं।–

नारी ही पुरुषो को रण में वीर बनाया करती है।
नारी ही दुख के अवसर पै धीर धराया करती हैं॥
पुरुषों ही की सेवा में सब जन्म बिताया करती हैं।
खुद तकलीफ उठाकर उनको सुख पहुचाया करती हैं॥

[पुरोहित जी का आना]

पुरोहित–जय, जय, शोणितपुराधीश महाराज की जय, राजराजेन्द्र श्री वाणासुर महाराज की जय।

वाणासुर–आइये, आइये, शुक्रजी महाराज आइये। कहिये कन्या कैसी है ?

पुरोहित—अहाहाहा ! राजराजेन्द्र, कन्या तो सारी सृष्टि की सुन्दरता लेकर आई है। प्रभातकाल के आकाश के समान निर्मल, प्रातःकालीन वायु के समान मनोहर, अरुणोदय के समय बढ़ती हुई किरणों के समान तेजवती और सूर्योदय के समय पूर्ण विकास को प्राप्त होनेवाली कमलिनी के समान कोमल, उज्ज्वल, स्निग्ध और शोभावाली है।

बाणासुर—यह सब भगवान् शंकर और भगवती पार्वती का फल है। शुक्रजी आपने उसका कुछ नाम भी विचारा है ?

पुरोहित—हां महाराज। नाम विचारने के लिये तो मैं ने अपने तमाम पोथी पत्रों को लौट पलट डाला है। मेरे विचार से पृथ्वीनाथ, उषःकाल में जन्म लेने के कारण "ऊषा" नाम रखना उचित होगा।

बाणासुर—ऊषा ! अहा, बड़ा अच्छा नाम है, बड़ा प्यारा नाम है, उमाजी की राशि से मिलता हुआ नाम है। यही रखिये !

पुरोहित—और श्रीमहाराज......

बाणासुर—कहिये !

[जन्म-पत्रिका खोलकर दिखाता है]

पुरोहित—जन्म पत्रिका भी मैं ने तैयार करली है !

बाणासुर—अहा, यह तो आपने बड़ा अच्छा काम किया। अच्छा तो बताइये ग्रह कैसे हैं ?

पुरोहित—राजेश्वर, जन्म-पत्रिका बताती है कि आपकी पुत्री विद्या में सरस्वती, गुणों में सावित्री, रूप में उमा और बल में दुर्गा के समान होगी।

बाणासुर—आयु ?

पुरोहित–बहुत अच्छी है।

बाणासुर–भाग्येश।

पुरोहित–बहुत अच्छा है।

बाणासुर–लग्नेश!

पुरोहित–बहुत अच्छा है।

बाणासुर–धर्म का ग्रह?

पुरोहित–वह भी बहुत अच्छा है।

बाणासुर–सौभाग्य?

पुरोहित–वह भी बहुत अच्छा है।

[नारद का प्रवेश]

नारद–[स्वगत हंसते हुए] सब अच्छा ही अच्छा है। वाह शुक्लजी महाराज, नारायण, नारायण।

पुरोहित–महाराज, यह कन्या मनमाना वर पायेगी, और आपकी कीर्ति बढ़ायेगी!

नारद–[आगे बढ़कर] नारायण, नारायण! राजेन्द्र! आप की पुत्री के जन्म का समाचार सुनकर मेरे हृदय में भी बड़ा आनन्द हुआ है, और उसी आनन्द के कारण इस समय यह आगमन हुआ है।

बाणासुर–पधारिये, पधारिये श्रीनारद जी महाराज, पधारिये। यह सब आपकी कृपा और भगवती पार्वती के वरदान का प्रसाद है। अच्छा देवर्षि जी, आप उचित अवसर पर पधारे, आपभी ज़रा जन्म-पत्रिका को विचारें।

नारद–हां, हाँ, तो लाइये जन्म–पत्रिका इधर लाइये। [पत्रिका खोलकर देखना] राजन्, कन्या के ग्रह तो अति उत्तम हैं!

पुरोहित–मैं ने भी यही विचारा था !

नारद–परन्तु पिता के लिये ग्रह कुछ वक्र हैं ।

पुरोहित–मैं ने भी तो यही विचारा था !

वाणासुर–शुक्लजी आपने यह कहां विचारा था ?

पुरोहित–महाराज, अपने मनमें मैं यह बात विचार चुका था । जब बताने की घड़ी आई तभी आपने नारदजी के हाथ में पत्रिका पहुंचाई ।

नारद–महाराज, शुक्लजी ने यह बात इसलिये नहीं बताई कि आपके ग्रह वक्र बताने के पहले इनके ग्रह वक्र होजाते । नारायण, नारायण,

पुरोहित–नहीं, ज्योतिषविद्या बड़ी अगम है । संभव है कि देवर्षि ने जन्मपत्रिका पर पूरी दृष्टि न डाली हो ! आज्ञा हो तो मैं फिर देखूं !

वाणासुर–आप तो रोज ही देखते रहेंगे, इस समय भगवान् नारदजी को देखने दीजिये । हाँ तो देवर्षिजी, पिताके लिये इसके ग्रह कैसे हैं ?

नारद–मेरे विचार से तो राजेन्द्र, इसके विवाह के समय रक्तपात होगा । आपको स्वयं किसी महारथी के साथ लड़ना पड़ेगा और घोर संग्राम करना पड़ेगा ।

वाणासुर–[प्रसन्न होकर] अहा, तबतो आनन्द ही आनन्द है । यह ग्रहों का टेढ़ापन नहीं बल्कि मेरी प्रसन्नता का चिन्ह है । युद्ध के नाम से मेरी भुजाएं फड़कती हैं, छाती फूलती है, रग रग में उत्साह बढ़ता है, रुएं २ में रौद्ररस का संचार होता है, और

ऐसा मालूम होता है कि वीरता का समुद्र उमड़ा हुआ चला आरहा है :—

रणभूमी ही रंग भूमि है, वीर बहादुर योधा की ।
समरभूमि ही सुयशभूमि है, इस बाणासुर योधा की ॥
घनसा गरजूं, जलसा बरसूं जब मैं हो रण के बसमें ।
तब नवजीवन सा आता है इस शरीर की नसनसमें ॥

नारद–तो महाराज, इतना हम बताये देते हैं कि उस युद्ध का परिणाम दुःखान्तक नहीं होगा । युद्धकाल की समाप्ति पर स्वयं भगवान् शंकर आपके गृह पर आयेंगे और संग्राम के अभिनय पर सुख की यवनिका गिरायेंगे ।

बाणासुर–तबतो महान् हर्ष है । अपूर्व उत्साह है । अतीव आनन्द है । और अद्वितीय सुख है ।:—

दास के घर आयेंगे स्वामी दया के वास्ते ।
कष्ट खुदही वे करेंगे जब कृपा के वास्ते ॥
तबतो इस किस्मतका तारा सबसे ऊंचा जायगा ।
लग्न में लग्नेश होकर चन्द्रमा आ जायगा ॥

नारद–एक बात और कहना रह गई राजेन्द्र ।

बाणासुर–वह भी कह डालिए ।

नारद–आपकी पुत्री का—

बाणासुर–हां, खोलकर कहिये ।

नारद–गृह बताते हैं—

बाणासुर–हां, हाँ, गृह क्या बताते हैं ?

नारद–किसी वैष्णव के साथ पाणिग्रहण होगा ।

बाणासुर–हैं ! वैष्णव के साथ पाणिग्रहण होगा ! बस, बस, नारदजी महाराज, बन्द कर दीजिए इस जन्म–पत्रिका को । यदि ऐसे ग्रह हैं तो फाड़ फेकिए इस जन्म–पत्रिका को । युद्ध होने की चिन्ता नहीं, रक्तपात होने का दुःख नहीं, परन्तु वैष्णव को कन्या विवाही जाय यह किसी प्रकार सहन नहीं ।:—

भौंचाल आये भूमि पै, या सिन्धु सूखजाय ।
आँधी उठे तूफान उठे, विश्व डगमगाय ॥
संसार की सब आफतें चाहे करें तबाह ।
पर वैष्णव के साथ में होगा नहीं विवाह ॥

नारद–वास्तव में यह घटना बड़ी शोचनीय होजायगी । नारायण, नारायण ।

बाणासुर–परन्तु, होतो जब जायगी जब मैं होजाने दूंगा ! नारदजी आप जानते हैं कि मैं शिवजी का अनन्य भक्त हूं । शैव सम्प्रदाय का प्रचारक हूं । जबतक पृथ्वी पर मेरा यह पाँव है, इस पांव के ऊपर यह छाती है, इस छाती के ऊपर यह हाथ है, और इस हाथ में यह जबर्दस्त गदा है, तबतक कौन ऐसा माई का लाल है जो युद्ध में मुझे परास्त कर सकता है ।

मैं वह शक्ती का पुतला हूं, सभामें रिपु को लीलूंगा ।
गरजकर शेर की मानिन्द, रिपु का रक्त पीलूंगा ॥

नारद–राजेन्द्र की शक्ति ऐसी ही है ।

बाणासुर–नारदजी, मैं वैष्णव सम्प्रदाय का कट्टर शत्रु हूं । उसरोज इसी शत्रुता के कारण मैं ने विष्णुदास नामक एक वैष्णव को प्राण–दण्ड दे डाला था । थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि मेरी प्रजा के बहुत से मूर्खलोग मेरा सामना करने को आगए ।

मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरे राज्य में वैष्णवों का इतना ज़ोर बढ़ गया। उसी दिन मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि पहले तो राज्ञी से वैष्णवों को समझाऊंगा, शैवधर्म में उन्हें लाने का उपाय रचाऊंगा, और अन्त में यदि वे नहीं मानेंगे तो विष्णुदास की तरह उन्हें भी ठिकाने लगाऊंगा।:—

बहादुर को कहीं किञ्चित भी भयखाना न आता है।
मैं राजा हूं, प्रजा से मुझको डरजाना न आता है॥

नारद—परन्तु राजन्, इन ग्रहों से आप किस प्रकार बचाउ करेंगे?

बाणासुर—उपाय करेंगे। सुनो, आज सबके सामने यह बात खोलकर कहे देता हूं कि विवाह के योग्य जब राजकुमारी होजायगी तो उसके कुछदिन पहले ही जल के भीतर एक खम्भे पर महल बनाकर उसमें क़ैद करदी जायगी। वैष्णव तो क्या किसी भी जीव के पास तक उसकी हवा न पहुंचाई जायगी।:—

देखना है किसतरह वैष्णव विवाह रचायेंगे।
किसतरह ग्रह अपना फल संसार में दिखलायेंगे॥
मेरा गृह जायेगा तो ग्रह भी न रहने पायेगा।
मेरी एक हुंकार से जग में प्रलय होजायेगा॥

विष्णुदास की आत्मा—

उदय हुआ है दुष्ट अब, तेरा पिछला पाप।
मिथ्या होसकता नहीं, ब्रह्मवंश का शाप॥

(सब आश्चर्य्य में आजाते हैं)

—०—

छठा दृश्य

[महन्त माधोदास के साथ साथ गोमतीदास, सरयूदास, कौशिकीदास, आदि २ शिष्यगण अंदर से "संध्या आरती की जय जय सीताराम" कहते हुए आते है]

माधोदास-[बाहर आकर] आओ भैया गोमतीदास, कौशिकीदास, सरयूदास, आओ। आरतीजी होचुकी, अब सत्संगजी होता है।

सरयू०-जो आज्ञा।

कौशिकी०-गुरुजी, रामजी की नारी मंदोदरी थी न?

माधो०-हां बच्चा कौशिकीदास। शैव सम्प्रदाय में एक राजजीदास रावण हुआ जिसके अनेकन भाई हुए। जिनके नाम कुम्भकरण, मेघनाद, विभीषण, अहिरावण, महिपासुर आदि थे।

गोमती०-गुरुजी, महिषासुर तो रामावतार मे नहीं था।

माधो०-नहीं भाई तुम नहीं समझे। विष्णुजी ने रामजी का अवतार धर के महिषासुर को मारा है। रामजी और विष्णुजी दोनों एक ही हैं। शास्त्र का ऐसा ही वचन है। हमने अक्षर थोड़े ही पढ़े हैं, यह तो राम खुरपा से अनुभव होगया है। रामाणजी में लिखा है—"करोति सुलभं सर्वं रामस्य महती खुरपा"-इसका अर्थ बड़े २ शास्त्री, महात्मा और पण्डित भी नहीं जानते। यह तो केवल गुरुमुख से ही प्राप्त होता है। बाल का आदि, अयोध्या का मध्य और उत्तर का अन्त, जो जाने वह पूरा सन्त। सुनो प्रथम इसी सश्लोक का अर्थ सुनाया जाता है।

सरयू०—गुरुजी, श्लोक का या सह्लोक का ?

गोमती०—चुपमूर्ख, गुरुकी बात काटता है ? भस्म होजायगा !

माधो०—"कराति सुलभं सर्वं रामस्य महती खुरपा"

सरयू०—हैं ! खुरपा या कृपा ?

गोमती०—चुप बे ! फिर गुरुकी बात काटी? भस्म होजायगा !

माधो०—इस सह्लोक का अर्थ यह है कि अपने भक्त पर दया करके जब रामजी उसे खुरपा देदेते है तो फिर उसे सारे पदार्थ सुलभ होजाते हैं, दुर्लभ कुछ नहीं रहता। वो उस खुरपे से सब कुछ करसकता है। खुरपे से बगीचे में घास छीले, मिट्टी खोदे, पृथ्वी में दबाहुआ धन निकाले, चिमटेका काम ले और कभी शैवों से झगड़ा होजाय तो शैवों के सरमें मारदे।

सब—सत्य है, गुरुवाणी सत्य है।

माधो०—सुनो, सावधान होकर सुनो ! आज रामचन्द्रजी के विवाह से सत्संगजी आरम्भ होगा :—

"आयान्तं दशरथंश्रुत्वा भानुकेतुं नृपोत्तमम् ।
सतुआनों कारयामास जनकः सेतूननेकशः ॥

अर्थात् महाराज जनक ने जब भानुकेतु को आते सुना तब सतुओंके सेतु अनेक स्थानों में बँधवादिए। अर्थात् जब जनकजीने बहुत बड़ी बारातजी लाते सुना तब उस बारातको केतुजीके समान जानकर सतुओंजी के पुल बंधवा दिए, जिससे बारात डूबजाय।

सरयू०—गुरुजी, रामायणजी में तो ऐसा नहीं कहा है !

माधो०—बचा, हम जो कहते हैं वह शास्त्र का वचन है। इतने पर भी सारे बराती तैरकर चले आए, और महाराज

दशरथजी ने जिस धूमधाम से बारातजी को चढ़ाया सो बखान में नहीं आता—

रूपाणि मदनो धृत्वा बहूनि रति संयुतः ।
ददर्श रामचन्द्रस्य विवाहं परमाद्भुतम् ॥

मानो मदन कहिए कामदेव, सो अपनी बहू रति को रूपाणि कहिए रुपये में गिरवीं धरके रामचन्द्रजी का अद्भुत विवाह देखता भया ।

सब—धन्य है, धन्य है ।

माधो०—फिर बढ़ारजी आयीं, जिसमें बड़े बड़े बरातियों के भोजन को महाराज जनकजी ने बड़ी २ कठिनाई से बड़े बनवाये । उस बड़ों को बनाने के लिए—

"शतयोजनविस्तीर्णान् कटाहान् कृतवान्मुनिः"

एक मुनि ने सौ सौ योजन के विस्तारवाली कढ़ाइयाँ बनायीं । तब—

"आकाशात्तप्ततैलस्य वृष्टिर्जाता समन्ततः"

आकाश से गरमागरम तेल बरसकर उन कढ़ाइयों में गिरा तब कहीं बड़े बने । अब परोसने के लिए—

"युगपद्दशसहस्राणाँ नृपाणाँ बुद्धिशालिनाम् ।
तोलने विफलीभूता चेष्टा तेषां बलान्विताम् ॥"

दसहजार बुद्धिमान् और बलवान् राजाओं की एक साथ चेष्टा करने पर भी एक बड़ा नहीं उठा—

सरयू०—अरे, यह क्या गड़बड़ घोटाला है? रामायण में यह कथा कहाँ है?

गोमती०—चुप मूर्ख, गुरु की बात काटता है? भस्म होजायगा!

माधो०—जब दस हजार राजाओं से भी वह बड़ा नहीं उठा तब—

"नाना भटयोद्धानां प्रेषयामास रावणः"

रावण ने भटयोद्धाओं के नाना को भेजा। अंतर्यामी विष्णु अवतार रामजी ने भटों के नाना को आते हुए जानकर हनूमान्‌जी को बुलाया। उन्होंने—

"कपिःसंगृह्य तान् सर्वान् मर्दयामास सत्वरं।"

सब बड़ों को पकड़ २ कर जल्दी जल्दी मसल डाला! तब वह बड़े परोसेगये और सब ने खाये। इत्यार्षे श्रीवाल्मीकीय रामायणे बालकांडे समाप्तम्। बोलो श्रीरामचन्द्र की जय।

सब—जय।

माधो०—सुनो भाई, श्रीरामायणजी में लिखा है—

"दुर्लभं नाम रामस्य मनुष्यैरन्तिमे क्षणे"

अर्थात् अन्त समय में मनुष्यों को राम नाम नहीं ले मिलता। इसलिए अभी लेलो। बोलो श्री रामचन्द्र की जय।

सब—श्रीरामचन्द्र की जय।

[कृष्णदास का प्रवेश]

कृष्णदास—(स्वगत) इन्हीं की—इन्हीं की—वैष्णव संगठन को इन्हीं जैसे पुरुषों की आवश्यकता है। संगठन ऐसे ही महात्माओं द्वारा हो सकता है:—

येही हैं संगठन शब्द को घर २ जो पहुंचायेंगे।
अपनी आवाजों से सोता वैष्णव धर्म जगायेंगे॥

(प्रकट) महन्तजी महाराज, प्रणाम।

माधो०—जय रघुनाथजी की बच्चा, जय रघुनाथजी की। आओ, सत्संगजी सुनलो।

कृष्णदास—बड़ी अच्छी बात है। मैं तो इसीलिए आया हूं।

माधो०—"लक्ष्मणेन सहारण्ये रामो राजीवलोचनः।
सीतामन्वेषयन् शैलं ऋष्यमूकमुपागमत्॥"

अब कींचकंधा कारण्ड प्रारम्भ होता है। अयोध्याकाण्ड, उत्तरकाण्ड, युद्धकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, आरिन्यकाण्ड, बालकाण्ड, बारी बारी से छै काण्डों का तो सत्संग होगया। अब सातवाँ काण्ड—कींचकंधा काण्ड—चलता है।

सरयू०—तो महाराज, बालकाण्ड के बाद कींचकंधा काण्ड आता है?

माधो०—हां बच्चा। छठा काण्ड बालकाण्ड, उसके आगे सातवाँ काण्ड कींचकंधाकाण्ड आता है। इस काण्ड में नारद और सनत्कुमार ऋषि का सम्वाद है। बनों में बरसात का पानी नहीं सूखा था, बड़ी कींच कंध थी। इसी से वाल्मीकिजी ने इस काण्ड का नाम कींचकंधा काण्ड रक्खा है।

कृष्ण०—(स्वगत) शोक! महाशोक!! यह क्या ऊटपटाँग बकता है! जिसे काण्डों के क्रमतक का ज्ञान नहीं है वह आज सत्संग करता है? सचमुच ऐसे ही मूर्खों ने वैष्णव धर्म का झंडा गिराया है, और अपने आपही अपने इष्टदेव का हास्य कराया है। और यह श्लोक तो भी वाल्मीकीय रामायण का नहीं है!

माधो०—हाँ भैया, सुनो—

"सीतामन्वेषयन् शैलं ऋष्यमूकमुपागमत्।"

ऋष्यि कहिए रीछ, और मूक कहिए गूंगा। अर्थात् रामजी

अब लक्ष्मणजी के साथ बनों में सीता माता को ढूंढते फिर रहे थे तब उन्हें एक गूंगा रीछ मिला। शैलका अर्थ है पर्वत। उस स्थान में पर्वत नगीच था। सो श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण सहित उसके ऊपर जा चढ़े। उपागमत् का अर्थ है ऊपर जा चढ़े। याद रखना।

सरयू०—महाराज, उपागमत् का अर्थ ऊपर जाचढ़े किस प्रकार?

माधो०—यह इंगिल भाषा का शब्द है। यह भाषा कलिकाल में प्रचार पायेगी। जब हम श्रीरामेश्वरजी की यात्रा में गए रहे तब बंगदेश के एक बङ्गाली बाबा से उपागमत् का अर्थ सुना रहा। हाँ, तो उपागमत् कहिए पर्वत के ऊपर चढ़गए। नहीं तो रामचन्द्रजी को गूंगे रीछ से बड़ा भारी युद्ध करना पड़ता।

गोमती०—और जो वह रीछ रामजी का दास होता तो?

माधो०—तो रामजी उसे बोलनेवाला बनादेते। क्योंकि रामायणजी में कहा ही जो है—'मूकं करोति वाचालम्'। रामका दास होता तो गूंगा ही नहीं होता। क्योंकि राम आसरे रामजी के दासों की महिमा रामजी से बड़ी है। बस अधिक समय होगया। कीचकधा कारडका बाक़ी सत्संग ठीक इसी समय कल होगा।

कृष्ण०—(स्वगत) हाय! वैष्णव धर्म के पुजारियो तुमपर बड़ा तरस आता है।

गोमती०—एक बात और बतादीजिए गुरुजी। राम राक्षस थे या रावण राक्षस था।

माधो०—यह बड़ी साधारण बात है । क्योंकि रामायणजी में लिखा है कि—

रामो दाशरथिः साक्षाद्भगवान्विश्ववाहकः ।
आत्मावै सर्वभूतानां प्राणाः वैसर्वप्राणिनाम्॥

इस प्रमाण से रावण भी राक्षस था और राम भी ....

कृष्ण०—(रोककर) ठहरिए महाराज, यह आप कैसा अर्थ कररहे हैं !

माधो०—अरे बाबा ! अर्थ करते २ तो खोपड़ी थकगयी । अच्छा आज यहीं सत्संगजी की समाप्ति होती है । बोलो रामलला की—

सब—जय ।

माधो०—भेखजी की—

सब—जय ।

माधो०—सब संतन की—

सब-जय ।

माधो०—अखाड़े की—

सब०—जय ।

कृष्ण०—(स्वगत) निश्चित होगया । वैष्णवो, तुम्हारे पतन का कारण आज निश्चित होगया । जिस रामायण को विद्वान् लोग आदर से सिर झुकाते हैं उसी रामायण के नाम पर अण्ड-सण्ट श्लोक बोलकर उनके अर्थों का अनर्थ किया जाता है ! हा, ऐसे ही ऐसे मूर्खों ने शास्त्रों को बिगाड़ा है । बस, सब से पहले हमें इन्हीं लोगो को सुधारने की आवश्यकता है । क्योंकि शत्रु

पर चढ़ाई करने के पहले अपने क़िले की कमज़ोरी को दूर करना ही दूरदर्शिता है :—

जगेंगे देश के सब वैष्णव तब देश जागेगा।
पुकारों से इन्हीं की धर्म का उद्देश जागेगा॥
सभी मत जब मिलेंगे, बैर की तलवार टूटेगी।
बहेगी प्रीति की धारा दुधारी धार टूटेगी॥

(प्रकट) भू मण्डल के सच्चे देव! यह आपका दास आपसे कुछ प्रश्न कर सकता है?

माधो०—हाँ, अवश्य।

कृष्ण०—रामायणजी में किसका चरित्र प्रधान है?

माधो०—श्रीरामचन्द्रजी का।

कृष्ण०—श्रीरामचन्द्रजी कौन थे?

माधो०—कौन थे? साक्षात् विष्णु भगवान् के अवतार थे।

कृष्ण०—अच्छा तो विष्णुजीका दिया हुआ कौनसा धर्म है?

माधो०—वैष्णव।

कृष्ण०—वह किसके द्वारा उन्नति के शिखर से अवनति की भूमि पर आया।

माधो०—शैवों के।

कृष्ण०—तो अब वैष्णव दल को जगाना है ना?

माधो०—हाँ।

कृष्ण०—आप भी कृपा करके वैष्णवों को जगाने में सहायता देंगे?

माधो०—अवश्य अवश्य। अबतक तो हम गुरुवाणी जी से निकली हुई रामायण जी का ही सत्संगजी करते रहे, अब आप

जैसा बतायेंगे वैसा कहदिया करेंगे । क्योंकि रामायणजी में लिखा है—

"धर्मस्यैवोपकाराय उद्भवन्तीह साधवः"

हमसाधू हैं, हमारा धर्म के ही लिए उद्भव हुआ है । इसलिए धर्म का काम हम नहीं करेंगे तो कौन करेगा ?

कृष्ण०--ऐसा है तो आइए, मेरे साथ चलने का कष्ट उठाइए।

माधो०--अच्छा भक्तराज, जैसी तुम्हारी इच्छा । चलिए ।

कृष्ण०--यह वह चिंगारी है जो इस समय अविद्यारूपी राख से छुपी हुई है । परन्तु जिस समय संगठन-मण्डल की ज्ञानवायु चलेगी तभी ये चिंगारी भी चटकेगी । और ऐसी चटकेगी कि जिससे घृणा-प्रचार, जनसंहार, आदि समस्त विकार भस्म हो जायेंगे, और संसार के निवासी सच्ची शांति पायेंगे ।

सुखद सत्संग होगा विश्व का मङ्गल मनाने को ।
जगेंगे जग के सब वैष्णव, सभी जगके जगाने को ॥

❀ गाना ❀

हम घर घर सदा लगायेंगे, वैष्णव का धर्म जगायेंगे ।
सच्चा सत्संग रचायेंगे, वैष्णव का धर्म जगायेंगे ॥
सिखलायेंगे विश्व को, प्रेम ज्ञान और कर्म ।
फैलायेंगे जगत में, शुद्ध वैष्णव धर्म ॥
जीवन को सुफल बनायेंगे, वैष्णव का धर्म जगायेंगे ।
पहुँचायेंगे गगनपै, अपना विजय निशान ।
मृतक तुल्य संसार को, देंगे जीवन दान ॥
खुद भी बलिहारी जायेंगे, वैष्णव का धर्म जगायेंगे ॥

(सब का जाना।)

—०—

❀ दृश्य सातवां ❀

(ऊषा का शयनागार)

[ऊषा वीणा बजाकर गाती है]

❀ गाना ❀

ऊषा—

प्रेम ही है सब जगमें सार।
बिना नदी के जैसे पर्वत बिनु फल जैसे डार।
त्योंही प्रेम बिना प्राणी का जीवन है निःसार॥

[भाषण] अहा, कैसा मनोहर दृश्य है। समस्त संसार शोभायमान दीख रहा है। जान पड़ता है कि सारे संसार में वसंत ऋतु की शोभा छाई हुई है। पुष्प फूल रहे हैं, भौंरे गूंजरहे हैं। और मन्द मन्द वायु शरीर में नवजीवन संचार कर रहा है। यह सब क्या है ? प्रेम देवताका ही तो खेल है :—

❀ गाना ❀

लता लता से, चन्द्रकला से बरसे प्रेम फुहार।
सकल सृष्टि कररही है मानो, आज प्रेम शृंगार॥

[भाषण] अहा, नदियाँ उमड़ उमड़ कर अपने प्रियतम समुद्र से मिलने जारही हैं। हरे भरे मैदान और खेत इन नदियों के बढ़ते हुए जल को लेने के लिये अपनी गोद फैलाये हुए हैं। पौधे बढ़गये हैं, और फल आने में थोड़ा ही समय शेष है। वेदान्तियों का यह कथन कि संसार असार है सर्वथा भ्रांतिपूर्ण और निर्मूल

है । मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि सृष्टि सदा नवयौवना रहती है, उसे कभी बुढ़ापा आता ही नहीं :-

❀ गाना ❀

तनमें मनमें बस्ती बनमें, है वह प्रेम निखार ।
मानो आज प्रेम-सागर में, लय होगा संसार ॥

[गाते गाते ऊषा सोजाती है और स्वप्न देखती है कि पार्वती जी अनिरुद्ध के साथ उसका पाणिग्रहण कराती हैं तभी चौंक कर उठखड़ी होती है]

ऊषा-हैं! यह मैंने क्या देखा ! अभी अभी क्या देखा ! क्या यह स्वप्न था, या जागृति ? नहीं २ स्वप्न था । जाग्रत अवस्था में क्या कोई पुरुष ऊषा की ओर आंख उठाकर देखसकता है । अहा, वह पुरुष भी कोई अलौकिक पुरुष था, वह सूरत भी कोई स्वर्गीय सूरत थी । ऐसा जान पड़ता था कि एक ओर ऊषा की सदेह प्रतिमा और दूसरी ओर वह मनहर मूर्ति, दोनों एक दूसरे को देखरहे हैं । फिर ? फिर ? वह दिव्यमूर्ति नेत्रों द्वारा ऊषा को मूर्छित करके ऊषा के हृदय के कोष से सहसा कोई रत्न निकालने का प्रयत्न कर रही थी । परन्तु ऊषा पीछे हटती थी और लज्जित नेत्रों से उसके चरण की ओर देखरही थी । इसके बाद ? क्या हुआ ? अचानक उमाजी ने ऊषा को समझाया कि यह मनमोहन पुरुष तेरा पति होगा । बस, बस इतनेही में आँख खुलगई ! क्या संसार में और भी कोई ऊषा है ? अथवा मैं स्वप्न में अपना ही अभिनय देख रही थी । नहीं, यह मैंने अपने ही विषय में स्वप्न देखा है, क्योंकि मैं उमाजी के प्रसाद से इस लोक में आयी हूं । उमाजी मेरी माता हैं । वही मेरा विवाह

करेंगी। विवाह के विषय में उन्हीं का पूर्णाधिकार है। परन्तु क्या यह स्वप्न सच्चा होसकता है? हृदय तो यही कहता है कि यह अवश्य सच्चा होगा। आह! अंदर ही अंदर एक अग्नि सी सुलग रही है। लेटना कठिन होगया है। परन्तु अभी तो रात बहुत बाक़ी है। क्या करूं कुछ समझ में नहीं आता! अच्छा, फिर एक बार उस दिव्यमूर्ति का ध्यान धरलूं! नहीं नहीं, मैं ठगीसी जा रही हूं। मेरे विचार चारों ओर बिना लगाम के घोड़ों की तरह भाग रहे हैं। अरी सरस्वती, शारदा, माधुरी, मनोरमा, प्रतिभा और प्रभा, चंचला और चित्रलेखा तुम सब कहाँगईं? यहां तो आओ!

[सखियों का आना]

शारदा—अरी, क्या हुआ?

सरस्वती—अपनी सखी को क्या होगया?

ऊषा—न जाने आज मेरा चित्त इतना क्यों व्यथित है। नींद नहीं आती है, तबियत बहुत ज़्यादा घबराती है।

शारदा—क्यों! क्या कोई आश्चर्यकारी स्वप्न देखा?

ऊषा—स्वप्न! मैं नहीं जानती कि वह स्वप्न था या जागृति! पर देखा कुछ अवश्य था। मैंने देखा कि एक अलौकिक प्रतिभावाला पुरुष ऊषा नामक बालिका की ओर वृक्ष की डाली की नाईं प्रेम का हाथ बढ़ाये हुए चला आरहा है। उसके मुख से सौन्दर्य और शुद्ध-प्रेम की छटा निकलकर ऊषा के श्वेत गात को लालायित करती जा रही है। इसके पश्चात् उमाजी ने आकर कहा कि यही युवक ऊषा का पति होगा।

सरस्वती—अरी, ये स्वप्न की बातें ऐसी ही होती हैं। मैंने भी एक स्वप्न देखा है।

माधुरी–अच्छा, तो तुम भी अपना स्वप्न सुनाडालो ।

सरस्वती–यदि मैं सुनाऊंगी तो तुम सब हंसोगी ।

प्रभा–हंसने की बात होगी तो हंसेगी, अकारण थोड़ेही हंसेंगी !

सरस्वती–अच्छा तो सुनो । मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे पति लक्ष्मी नामक एक दूसरी स्त्री से अपना विवाह कररहे हैं और मैं भी प्रसन्नता पूर्वक उस विवाह में सम्मिलित हो रही हूं । भला, तुम्हीं बताओ, क्या ऐसा स्वप्न सच्चा हो होसकता है ?

प्रतिभा–कदापि नहीं ।

सरस्वती–मैंने तो अनेकों बार स्वप्न देखे हैं, परन्तु आज तक एकभी स्वप्न सच्चा न निकला ।

प्रभा–और मेरी तो सुनो, मेरा स्वप्न इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक है ।

ऊषा–अच्छा, तो तू भी सुना ।

प्रभा–मैंने स्वप्न में देखा कि मैं जब रसोई बना चुकी तो परोसने के समय भूलसे एक कच्ची रोटी अपने पति की थाली में रखगयी । उन्होंने क्रोध में भरकर मेरे गिलास खींचकर मारा । वह गिलास तो मेरे नहीं लगा । परन्तु मैंने जो उनके बेलन मारा वह लग गया । [सबका हंसना]

माधुरी–परन्तु मेरा एक स्वप्न तो सच्चा निकला ।

मनोरमा–अच्छा तो तुमभी उस स्वप्न को सुनाओ ।

माधुरी–एक बार मैंने स्वप्न में देखा कि मेरा विवाह मेरेही ग्राम के किसी मतवाले युवक के साथ होगा । मेरे पिता तीन वर्ष तक वर की तलाश में घूमे, पर अन्तमें वही स्वप्न सच्चा हुआ ।

ऊषा—तो मेरा स्वप्न भी सच्चा होगा। यदि नहीं होगा तो मैं उसे सच्चा करने का प्रयत्न करूंगी। में वीर-बाला हूं। जिस पति को एक बार स्वप्न में वर लिया, उसके ही साथ विवाह करूंगी, और यदि वह न मिला तो जन्म भर कुआँरी रहूंगी। भारत की एक साधारण से साधारण नारी भी जब एक बार किसी पुरुष को अपना पति मान लेती है तो फिर वह जीवन पर्यन्त दूसरे पुरुष का विचार तक मनमें लाना पाप समझती है। फिर मैं तो महाराजा बाणासुर की कन्या हूं! और उमाजी की कृपा से स्वप्न में एक दिव्य पुरुष को वर चुकी हूं। अहा, अब तो वे स्वप्न वाले महापुरुष ही मेरे सर्वस्व है।

❀ गाना ❀

मोहिं सपने में दरस दिखाय गयोरे,
मेरो मन मोहन सोहन रसिया।
आउत मैं सपने हरि को लखि नेसुकधार संकोच न छोड़ी।
आगेह्वै आड़े भये "मतिराम" मह्हूं चितयोचित लालच ओड़ी॥
ओठन को रसलेन को आलिरी मेरी गही कर कांपत ठोड़ी।
औरभई न सखी कछु बात, गई इतनेही में नींद निगोड़ी॥
बरजोरी दौरी मैं घर संग,
बौरी मोहिं बनायगयो रे। मोहिं० ॥

पौढ़ी हती पलका पर मैं निशि, ज्ञानरुध्यान पियामन लाये।
लागिगई पलकें पलसों, पल लागतही पल में पिया आये॥
ज्योंही उठी उनके मिलिवे कहं जागि परी पिय पास न आये।
"मीरन" औरतो सोयके खोवत, हौं सखि प्रीतम जागिगंवाये॥
सुन्दर सुघर मनोहर प्यारो,
अँखियन बीच समाय गयोरे॥

चित्रलेखा–सखी, धीर धरो, इतनी न अकुलाओ । मेरा विश्वास है कि यह स्वप्न सच्चा होगा, और अवश्य सच्चा होगा। हमारे यहाँ प्राचीन समय से स्वप्न मे बीती हुई बातों का अर्थ बतलाने का एक शास्त्र चला आया है । उस समय की बहुतेरी स्त्रियां तो इस शास्त्र में बड़ी प्रवीण होती थीं । परन्तु आज भी वह शास्त्र लुप्त नहीं हुआ है । यह दूसरी बात है कि आज उसके जाननेवालो की संख्या कम है ।

ऊषा–तू उस शास्त्र को जानती है ?

चित्र०–हाँ, जानती हूं ।

ऊषा–तो मेरे स्वप्न का चित्र खींचकर बतला । मैं भी तो देखूं कि तेरा शास्त्र कैसा है !

चित्र०–ऐसे थोड़े ही बताऊंगी, पहले थोड़ी मिठाई तो मंगाओ !

ऊषा–सखी, मेरा चित्त अत्यन्त व्यग्र होरहा है। देर मतकर।

चित्र०–अच्छा, देखो, [काले तख्ते पर इन्द्र का चित्र बनाकर] क्या तुम्हारा मनोवांछित वर यही है ?

ऊषा–नहीं, नहीं,

चित्र०–[कामदेव का चित्र बनाकर] अच्छा तो यह है ?

ऊषा–बहन, तुम तो हंसी कर रही हो । दुःखमें सहानुभूति दिखलाने के बजाय दिल्लगी कर रही हो । वह मूर्ति इससे कहीं अधिक सुन्दर, शोभायमान, लावण्यमयी और उज्ज्वल थी ।

चित्र०–अच्छा, और देखो ।[कृष्ण का चित्र बनाकर दिखाती है]

ऊषा–न जाने क्यों मेरा मुख इस चित्र के सामने नहीं ठहरता है ! नाक और भौं तो कुछ इससे मिलती जुलती थी ।

चित्र०–अच्छा, और सही [प्रद्युम्न का चित्र बनाकर] इसे देखो ।

ऊषा—यही है, यही है । (ठहरकर) नहीं नहीं, भ्रम हुआ, बड़ी भूल हुई । मुख, नाक और भौं तो मिलगई । परन्तु सूरत से आयु उतनी नहीं जान पड़ती । मेरा हृदय कहरहा है कि मैं अब किनारे तक आगई हूं केवल दोचार हाथ ही की और कसर है ।

चित्र०—तो बस, होचुका । अब मैं चित्र भी नहीं दिखला सकती । मुझे इतनी ही विद्या आती है ।

ऊषा—मेरी बहन, मेरी प्यारी बहन, मुझपर कृपाकर । अमृत का प्याला होठों से लगाकर न हटा, यदि अधिक तरसायगी तो मेरे प्राण निकल जायेंगे ।

चित्र०—अच्छा, [अनिरुद्ध का चित्र बनाकर] इस चित्र को देख ।

ऊषा—हाँ, हाँ यही है । यही है ! (आगे बढ़ती है)

चित्र०—[चित्र को मिटाकर] नहीं, यह चित्र मैंने भूल से दिखला दिया है । यह चित्र वह चित्र नहीं होसकता ।

ऊषा—देखो, तुम मुझपर इतना अत्याचार न करो । मैं स्वयं पीड़ित हूं । मैं स्वयं सताई हुई हूं । मुझपर दया करो ।

[चित्रलेखा फिर अनिरुद्ध का चित्र बनाती है और ऊषा उसे देखकर चित्रलिखितसी रह जाती है]

चित्र०—क्यों बहन ऊषा, बोलतीं क्यों नहीं ? तुम तो बिलकुल पाषाणमयी अहिल्या होगईं ।

माधुरी—मैं तो अपने स्वामीके सामने खूब चंचल होजाती हूं !

सरस्वती—परन्तु ऊषा तो केवल चित्र को देखकर ही साक्षात् चित्रसी बनगई, जब पति के सामने जायेंगी तो न जाने क्या दशा होगी ।

ऊषा—स्वप्न सच्चा है और सच्चा होगा; इसमे तनिक सन्देह नहीं। बहन चित्रलेखा, तुमने मेरे एक बड़े भारी रोग की शान्ति करदी। मैं जितनी भी तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं; थोड़ी है।

सरस्वती—हाँ जी, इनकी कृतज्ञ कैसे न होओगी!

ऊषा—परमात्मा वह समय जल्द लाये, जब कि मैं बहन चित्रलेखा के ऋण को धन द्वारा नहीं, बल्कि अपने प्रेम द्वारा चुका सकूं।

सरस्वती—अच्छा तो अब इनसे यह कहिए कि उस मूर्ति के प्रत्यक्ष दर्शन करायें!

ऊषा—सखी, यह तो तूने मेरे मनकी बात कह डाली। (चित्रलेखा से) बहन चित्रलेखा बता, अब उस देवता से सदेह भेंट कैसे होगी! मैं धन छोड़ सकती हूं, धाम त्याग सकती हूं, राज्यको ठोकर मार सकती हूं, यहां तक कि प्राणोंको भी न्योछावर करसकती हूं—केवल एक बार दर्शन के लिये—दर्शन के पीछे यदि मृत्यु भी आजाय तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगी। संसार में देह धारण करके मनुष्य तरह तरह के ध्येय का ध्यान करता है, किन्तु मुझे इस समय केवल दोही का ध्यान है। एक उस मनोहर चित्रका और दूसरा तेरा। तू मेरी बडी बहन है, तू मेरी सच्ची सखी है। जिस प्रकार से भी हो, उस मूर्ति को यहाँ ले आ।

चित्र०—मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करूंगी। मुझे तो दीखता है कि ईश्वर ने समस्त विद्याएं मुझे आज ही के लिये प्रदान की हैं। मैं आकाश-मार्ग में उड़ना भी तो जानती हूं।

ऊषा—बस तो फिर! काम ही बनगया। अब देर न कर! भगवती पार्वती मेरा तेरा और उनका कल्याण करें।

चित्र०--ले सखी, मैं तेरी खातिर योगिनी बनकर चली ।
पंखसे--मन्त्रों के अपने पद्मिनी बनकर चली ॥
ऊषा—पद्मिनी बनकर नहीं, एक सिद्धिनी बनकर चली ।
उस सँजीवन को, पवन की नन्दिनी बनकर चली ॥

[चित्रलेखा का योगशक्ति द्वारा आकाश गमन । सब का आश्चर्य में देखना । उधर सीनका बदलना और द्वारिकापुरी का दृश्य दिखाई देना । अनिरुद्ध सोरहा है और चित्रलेखा उसकी ओर को जारही है ।]

ड्रापसीन.

* अंक दूसरा *

पहला दृश्य

(स्थान द्वारिकापुरी)

[चित्रलेखा का प्रवेश]

चित्रलेखा—

गाना

धन्य धन्य द्वारिकापुरी है, कृष्णचन्द्र की यह नगरी है।
सुन्दर सुखदाता सगरी है, जिसकी महिमा बहुत बड़ी है ॥
गूंजरही भौंरों की टोली, बोलरही है कोकिल बोली।
हरियाली से हरी भरी है, धन्य धन्य द्वारिकापुरी है ॥

—:o:—

चित्रलेखा, तू द्वारिकापुरी तो पहुंचगई, परन्तु तेरा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा? राजकुमार अनिरुद्ध को उड़ाकर लेजाना साधारण कार्य नहीं है। क्योंकि इस नगरी का रक्षक स्वयं भगवान् द्वारिकानाथ का चक्र सुदर्शन है।

[नारदजी का आना]

नारद—आयुष्मती! कहो चित्रलेखा, अच्छी तो हो! राजकुमारी ऊषा औ राजेन्द्र वाणासुर अच्छी तरह हैं? इधर कैसे आना हुआ?

चित्र०—सब अच्छे हैं महाराज। जब आप जैसे महान् पुरुषों की कृपा है तो फिर क्लेश कहां? आनन्द ही आनन्द है। देवर्षिजी, राजकुमार अनिरुद्ध को सखी ऊषा ने जबसे स्वप्न में देखा है, तभी से वह उन्हें वर चुकी है। उसकी दृढ़ हठ है कि मैं विवाह यदि करूंगी तो अनिरुद्ध जी से करूँगी, नहीं तो जीवन भर अविवाहित रहकर तपस्या करूंगी।

नारद—(स्वगत) धन्य, आर्यबाले! (प्रकट) अविवाहित रहकर तपस्या करना तो अच्छा है, यह तो बड़ा ऊंचा दर्जा है।

चित्र०—वाह, ऋषिजी! आप तो सारी दुनिया को ऋषि बनाना चाहते हैं।

नारद—तो क्या ऋषि बनना कोई बुरा काम है?

चित्र०—हाँ, कुमार अवस्था में बुरा है। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम, उसके बाद वाणप्रस्थाश्रम तब कहीं सन्यास, आपने तो पहले ही रखदिया पांच के ऊपर पचास।

नारद—पर तुम तो हो हमसे भी ज्यादा चालाक, चारों वेद और छहों शास्त्रों में ताक!

चित्र०—अजी, आपकी कला के आगे हम क्या हैं खाक ? खैर, यह मनोरञ्जन जानेदीजिये और यह बताइये कि राजकुमार अनिरुद्ध को वहां किस प्रकार पहुंचाया जाय ? सुदर्शनचक्र जो उनका पहरेदार है उसे किस प्रकार उस जगह से हटाया जाय !

नारद—अरे, तुम जैसी स्त्रियों के लिये तो यह सब बातें हाथ का खेल है। नारद इसमे क्या बताये :—"स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः"।

चित्र०—महाराज यह ठठोली का समय नहीं है।

नारद—अच्छा तो सुनो, यहकाम करना ही है तो तुम अनिरुद्ध की माता रानी रुक्मावती का रूप बनाओ, और सुदर्शन को जाकर यह हुक्म सुनाओ कि नारदजी तुम्हें बुलारहे हैं। :—

ठीक जो कम्पा लगा तो होगा तोता हाथ में।
वरना नारद भी बंधेगा व्याधिनी के साथ में॥

चित्र०—धन्य है, धन्य है, मुनिराज ! आपको धन्य है। आपने अति उत्तम उपाय सोचा है।

नारद—अच्छा तो जाओ, अब रात अधिक नहीं रही है। बहुत थोड़ा समय है। सब काम अति शीघ्र कर डालो !

चित्र०—जो आज्ञा महाराज।

[चलीजाती है]

नारद—चलनेदो यह सब जो कुछ होरहा है होने दो। वैष्णव और शैव का झगड़ा मिटाने का यही एक उपाय है कि जिस प्रकार भी हो अनिरुद्ध और ऊषा का विवाह करादिया जाय। चल—नारद—रात भर के लिए कहीं ग़ायब होजा।

—o—

❀ गाना ❀

छोड़कर मन के सब छलछन्द, भजो गोविंद, भजो गोविंद ।
बिछा है माया का जो फंद, फँसे हैं इसमें प्राणी वृन्द,
पृथक् रहने में है आनन्द, भजो गोविंद, भजो गोविंद ॥ १ ॥
रटेगी जिह्वा जभी मुकुंद, ध्यान में आयेगा नंदनंद ।
तभी पाओगे परमानन्द, भजो गोविंद, भजो गोविंद ॥ २ ॥
[गाते गाते चले जाना]

—o—

दृश्य दूसरा

[अनिरुद्ध का शयनागार, अनिरुद्ध सोरहा है, सुदर्शनचक्र पहरा दे रहा है चित्रलेखा प्रवेश करती है]

चित्र०—[स्वगत] यही है, राजकुमार अनिरुद्ध का महल यही है। सखी ऊषा का भाग्य विधाता इसी महल में शयन कर रहा है। जाऊँ और जाकर उसे जगा दूं। परन्तु नहीं, जगाने के बाद उसे लेजाना बड़ा कठिन है। तब ? तब ? इसी तरह सोते हुए को पलंग सहित उड़ा लेजाना ही तो मेरे कार्य का क्रम है, और इसी के सिद्ध होने पर तो मेरा सुफल परिश्रम है। परन्तु वहाँ तक पहुंचने में भी तो बड़ी चिन्ता है, मैं प्रत्यक्ष देख रही हूं कि वहां सुदर्शन चक्र का पहरा है। फिर ? नारद जी की बताई हुई युक्ति ही ठीक है। आत्मशक्ति, काम कर। चित्रलेखा, तू अनिरुद्ध की माता रुक्मावती का रूप धर ! [रुक्मावती का रूप बनाती है] बस अब ठीक होगई, काम शुरू करना चाहिये। :—

यह चालाकी, यह ऐय्यारी सब प्राण सखी के कारन है।
जिसमें ऊषा का जीवन है उसमें ही अपना जीवन है॥

(प्रकट) सुदर्शन !

सुदर्शन-(मनुष्यरूप में प्रकट होकर) कौन ? इस आधी रात के भयंकर समय में मुझे कौन पुकारता है ?

चित्र०:-जिसको पुकारने का अधिकार है।

सुदर्शन-(देखकर) हयँ, कौन ? छोटी माता जी ? प्रणाम !

चित्र०-चिरंजीवी हो। सुदर्शन, तुम मेरा कितना आदर करते हो ?

सुदर्शन-माता जी, आज आप यह कैसा प्रश्न कर रही हैं ? पुत्र माता का जितना आदर करता है, शिष्य गुरुपत्नी का जितना आदर करता है, यह सेवक उतना ही आदर अपनी स्वामिनी का करता है।

चित्र०-धन्य, सदाचारी सेवक ! अच्छा यदि मैं तुम से इस समय यहाँ से हट जाने के लिये कहूं तो तुम हट सकते हो ?

सुदर्शन-परन्तु ऐसा आप क्यों कहेंगी ?

चित्र०-अपनी प्यारी के लाभ के लिये।

सुदर्शन-हयँ। अपनी प्यारी के लाभ के लिये ? यह आप क्या कह रही हैं ?

चित्र०-(स्वगत) भूली, चित्रलेखा तू भूली। शीघ्रता में तू यह क्या बक गई। सचमुच सुदर्शन के तेज के आगे तू अपना अभिमान भूल चली। तू तो इस समय रुक्मावती है ! देवर्षि नारद की शक्ति, तू मेरी सहायता कर। जिससे कि कार्य सुफल हो। (प्रकट) मैं ठीक कह रही हूं सुदर्शन। अपनी प्यारी वस्तु के लाभ के लिए !

सुदर्शन—आपने तो अभी कहा था कि अपनी प्यारी के लाभ के लिये ।

चित्र०—तो अब भी तो मैं कहती हूं कि अपनी प्यारी के लाभ के लिये। दुनिया में मेरी सब से प्यारी चीज क्या है, जानते हो ?

सुदर्शन—जानता हूं, माता की सब से प्यारी चीज उसकी सन्तान होती है ।

चित्र०—हां, तुम समझगये—इसीलिए मेरी सब से प्यारी चीज—यह अनिरुद्ध है । मेरी प्यारी की भी सबसे प्यारी चीज यह अनिरुद्ध है ।

सुदर्शन—(आश्चर्य से) हयँ, आपकी प्यारी की भी प्यारी चीज ।

चित्र०—(स्वगत) चित्रलेखा, फिर बहकी ! देवर्षि मुझे सँभालना । (प्रकट) हाँ, मेरी सबसे प्यारी चीज—आत्मा है । और उस आत्मा की सबसे प्यारी चीज यह अनिरुद्ध है । इसीलिए मैंने कहा कि यह मेरी प्यारी की भी प्यारी चीज है ।

सुदर्शन—ठीक है, तो फिर इनके लाभ की बात क्या है ?

चित्र०—मैंने अभी एक स्वप्न देखा है कि अनिरुद्ध का विवाह होने वाला है ।

सुदर्शन—राजकुमार का विवाह होनेवाला है ? कब ? किस दिन ? किस जगह पर ? किस राजपुत्री से ?

चित्र०—पहले बात पूरी होने दो !

सुदर्शन—अजी जरा ठहर तो जाओ, मुझे पहले खुशी तो मना लेने दो । राजकुमार क विवाह का समाचार सुनं और हर्ष प्रकट न करूँ तो मुझ जैसा उत्साहहीन कौन हो सकता है ? देखिये मैं इस विवाह में जरी का जोड़ा लूंगा ।

चित्र०--दूंगी ।

सुदर्शन--मोतियों का तोड़ा लूंगा !

चित्र०--दूंगी ।

सुदर्शन--लक्खी घोड़ा लूंगा ।

चित्र०--दूंगी । अच्छा तो सुनो, तुम शीघ्र नारद जी के पास चले जाओ ।

सुदर्शन--क्या लग्न-पत्रिका बँचवाने के लिए ?

चित्र०--अरे तुम तो हर्ष में दीवाने से होगये हो ! तुम यह भूलगये कि यह सब स्वप्न की बात है।

सुदर्शन--हां माता जी, अब ध्यान आया कि आपने अपना स्वप्न वर्णन किया । अच्छा, तो इस समय मुझे नारद जीके पास क्यों जाना चाहिये ?

चित्र०--इस स्वप्न का फल मालूम करने के लिए ।

सुदर्शन--इस समय--आधी रात में ?

चित्र०--हाँ, नारद जी तो सब समय जागते ही रहते हैं। फिर उन जैसे मुनि लोग तो रात्रि ही में शान्ति-पूर्वक बात करते हैं ।

सुदर्शन--बहुत अच्छा, लीजिये यह चला ! परन्तु माता जी कहीं यह सब भी तो एक स्वप्न नहीं ?

चित्र०--नहीं, स्वप्न इसके पहले था, जिसको सच्चा करने के लिए मैं यहां आई हूं ।

सुदर्शन--परंतु माताजी, पहरे पर से मेरा हटना तो उचित नहीं है !

चित्र०--जब माता स्वयं बेटे का पहरा देने आगई है, तब तुम्हें काहे की चिन्ता है ?

सुदर्शन--कहीं बड़े महाराज नाराज़ न हों !

चित्र०--अगर वे नाराज़ हों तो कह देना कि छोटी माता का हुक्म था !

सुदर्शन--जो आज्ञा ! लीजिए यह चला । परन्तु माताजी, अगर विवाह हो तो मेरे जोड़े, तोड़े और घोड़े का ध्यान रखना !

[सुदर्शन का चलाजाना]

चित्र०--(स्वगत) जान में जान आई । चाल चलगई । वह भी किसके सामने, भगवान् विष्णु के चक्रसुदर्शन के सामने । कौन सुदर्शनचक्र ? जिसने बहुत से असुरों का संहार किया है, और दुश्मन की नीति को सदैव बेकार किया है । अब नारदजी इससे निपटते रहेंगे ।:—

चक्रमें फंसकरके उनके, चक्र भी चकरायगा ।
ठीक इतने समयमें, यहाँ कार्य सब होजायगा ॥

बस, अब चलूं और पलंग सहित आकाश गमन करूं ।

इच्छा-शक्ती, काम कर, मंत्र सुफल कर योग ।
पहुंचे यह ऊषा निकट, हो ऐसा संयोग ॥

[पलंग सहित आकाश में उड़ना, पर्दा गिरता है]

तीसरा दृश्य

-(स्थान रास्ता)-

[भोलागिरि और गौरीगिरि का हाथ में चिलम लियेहुए आना]

गौरीगिरि:-

❀ गाना ❀

तम्बाकू नहीं है । मरगए, तम्बाकू नहीं है ।
तम्बाकू ऐसी मोहनी, जिसके लंबे लंबे पात ।
लाख टके का आदमी रे खड़ा पसारे हाथ ॥ तम्बाकू०॥
साधु सन्त भी अब फेरी से लौट आश्रम जाँय ।
झोली खाली देखके रोवें, हाय तमाखू नाँय ॥ तम्बाकू०॥

-०-

भोलागिरी-ले अभी तो एक सुलफा तम्बाकू और एक कली गांजे की झोली में और है । चढ़ा चिलम, मिटा ग़म ।

गौरी०-बम् शंकर, कांटा लगे न कंकर, मूजी लोगों को तंग कर और खाने पीने का ढंगकर, (चिलम चढाकर) लेना हो बाबा भूतनाथ ।

भोला०-(चिलम लेकर) अहा, जिसने न पी गांजे की कली उससे लड़के तो लड़की भली, लो भाई गौरीगिरि । (गौरी को चिलम देना)

गौरी०-बम् भोले, कालहर, कंटकहर, दुःखहर, दरिद्रहर, (चिलम हाथ में लेकर) चिलम चमेली फूकदे दुश्मन की हवेली, सुनना हो भोलेनाथ । :-

चिलम पियारी है रतनारी, मुक्ति दिलावनहारी।
पीते हैं जो इसे औलिया, उनकी उमर हजारी॥

लेना हो विश्वनाथ, मुंडमालधारी, खबर हमारी।

भोला०—भाई गौरीगिरि, सुना है कि कृष्णदास नामक किसी वैष्णव ने संगठन बनाया है। अब एक बड़ी हानि हुई। हम तुम जो जहाँ तहां झगड़े उठाकर वैष्णवों को शैव बना लेतेथे, उसमें बाधा आगई।

गौरी०—अरे क्या बाधा आगई। हम तो शंकर-पंथी हैं। क्रोध आजायगा तो सारे संसार का संहार करडालेंगे। हमने तो सुना है कि पुराने ख़याल के वैष्णव इन संगठन पंथी वैष्णवों की बात नहीं मानते।

भोला०—हाँ, भाई अभी तो वह लोग इनकी बात नहीं मानते पर मानने लगजायेंगे। मैंने सोचा है, इससे पहले चिलम भवानी की सेवा करके जहाँ तहाँ खूब झगड़ा उठाया जाय और वैष्णवों के बालक बालिकाओं को भगाया जाय। जो प्रसन्नता पूर्वक शैव न हो उसे जबरदस्ती शैव बनाया जाय।

गौरी०—किस तरह बनाया जाय।

भोला०—चिलम पिलाके बनाया जाय। कंठी तोड़ कर बनाया जाय।

गौरी०—अरे यार मेरा तो यह मत है कि :—

वैष्णव हो या शैव हो, नहीं किसी की शर्म।
मालपुआ मिलता जहां, वहीं हमारा धर्म॥

सुनरे जन्म के शैव, तू तो प्रारब्धका हेटा है जो शैवोंमें जन्म लेके शैव ही रहा। यहां तो जब तक वैष्णवो में मोहनथाल पाया तबतक सच्चे वैष्णव रहे, और जब उन्होंने ताड़ लिया तो शाक्तों मे आ धमके। कुछ दिन वहाँ की फूली २ कचौड़ियाँ खाईं। फिर तुम्हारे यहाँ आकर मालपुए और जलेबियां उड़ाईं।

भोला०—अरे क्या तू वैष्णव सम्प्रदाय में था ? या चिलम ज्यादा चढ़गई है !

गौरी०—अरे बेटा, अपनी तो सारी आयुही वैष्णव सम्प्रदाय मे गई, जब वहाँ मालपुओं का टोटा आया तो पीताम्बर फेककर यह लंगोटा लगाया। देखो, तुमसे भी कहे देता हूं कि रोज चिलम पिलाने के बाद हलुआ खिलाना होगा, नहीं तो तुम्हारा पंथ भी छोड़देंगे।

भोला०—अरे हलुआ चाहे जितना खाओ। हमारे पंथ में क्या आँखों के अंधे और गाँठ के पूरे यजमानों की कमी है ?

गौरी०—ऐसा है तब तो मौज ही मौज है।—

जब मालपुआ हो खाने को, गाँजे की चिलम उड़ाने को।
तो धिक् है पोथी पढ़ने और घंटा घड़ियाल बजानेको ॥

भोला०—अच्छा तो सुनो, कल ही एक वैष्णव बालक को शंकरगिरि लाया है। वह बहुत समझा चुका पर लड़का वैष्णव धर्म नहीं छोड़ता। आज वह उसी बच्चे को यहाँ लाता होगा। तुम पहले उसको समझाना, अगर वह न माने तो जबरदस्ती शैव बनाना।

गौरी०—यह कौनसी बड़ी बात है यह तो अपनी भभूत की अदना करामात है।

भोला०—तो लो वह शंकरगिरि भी लड़के को ले आया।

गौरी०—तो लो यह गौरीगिरि भी मैदान में कूद आया।

[पांव पर पांव चढ़ाके बैठना, शंकरगिरि का गङ्गाराम को लेकर आना।]

गौरी०—आओ बेटा, व्यर्थ की हठ छोड़ दो। शैव होना कुछ अनुचित नहीं है। वैष्णव धर्म में तुम्हें रोज सवेरे एक लड्डू मिलता था तो यहां दो लड्डू मिला करेंगे।

गङ्गाराम—चल चल लंगोटे, लड्डू पर कहीं धर्म छोड़ा जाता है।
धर्म ही संसार में एक सार है। धर्म ही हरजीव का आधार है॥
धर्म पे तन प्रान सब बलिहार है। धर्म जो छोड़े उसे धिक्कार है॥

गौरी०—अरे जब तक झलमलाती जलेबियां, लच्छेदार रबड़ियाँ और टकोरेदार पूरियाँ पेट नहीं पाता है तबतक कहीं धर्म पूरा होने पाता है ?

भोला०—अरे बच्चा, वैष्णव-धर्म धर्म नहीं हैं, सच्चा धर्म तो शैव पंथ ही है।

गङ्गाराम—हैं, यह कैसे ? तुमने वैष्णव धर्म को समझा भी है !

भोला०—अरे समझा भी है, सोचा भी है, सुना भी है और देखा भी है।

गङ्गाराम—क्या खाक समझा और सोचा है। अपने ही धर्म की पुस्तकों के पन्ने लौटनेवालो और उसके अर्थ का अनर्थ करके दुनियाँ को धोका देनेवालो, तुम धर्म की महिमा क्या जानो ?

वैष्णव वह धर्म है जो देश का शृंगार है।
देशके जीवन की नौका का वही पतवार है॥
जिस समय संसार में पापों का बढ़जाता है जोर।
तब हमारा विष्णु ही लेता यहां अवतार है॥

गौरी०—देखना है तेरे अवतार को, तू नहीं मानेगा ?

गङ्गाराम—हर्गिज़ नहीं ।

गौरी०—मार डाला जायगा ।

गङ्गाराम—पर्वाह नहीं ।

आयेगा किस काम यह देह जन्म और प्रान ।
नवजीवन है—धर्मपर, हो जाना बलिदान ॥

भोला०—पकड़लो ।

गङ्गाराम—ख़बरदार ।

गौरी०—तेरा यहाँ कौन मददगार है ।

गङ्गाराम—वह विष्णु, जो सारी सृष्टि का रचनहार है ।

भोला०—अच्छा तो इसके विष्णु को देखना है । भैया गौरीगिरि, फाड़ो इसके मुंह को । ठूंसो इसमें चिलम ।

कृष्णदास—(नेपथ्य में) ठहरो खबरदार !

भोला०—अरे वैष्णव दल आरहा है । जल्दी से इसकी कंठी तोड़ो ।

गङ्गाराम—अरे बचाओ, बचाओ, मुझे इन धूर्तों से बचाओ ।

कृष्ण०—बेटा न घबराओ ।

भोला०—भागो भैया, गौरीगिरि, यहाँ हम तुम दो ही हैं, इधरसे चार आदमी आरहे हैं । फिर कभी निबट लेंगे । जबरदस्ती किसी का धर्म बदलने में भी गुनाह है । (दोनों का जाना)

[कृष्णदास और महन्त माधोदास का आना]

कृष्ण०—बेटा तुम कौन हो ।

गङ्गा०—एक पतित वैष्णव ।

कृष्ण०—पतित ? पतित कैसे ?

गङ्गा०—दूर रहिये, दूर रहिये। वैष्णव धर्म के मुकुट-मणि, इस भ्रष्ट बालक से दूर रहिये। इसकी गन्ध तुम्हें कहीं अपवित्र न करदे। यह शैवों द्वारा बलात्कार से शैव होगया है।

कृष्ण०—(स्वगत) सुन रहा है कृष्णदास, तू इस बालक की करुणाभरी पुकार सुनरहा है। हाय,पृथ्वी तू फट क्यों नहीं जाती, आकाश तू टूट क्यों नहीं पड़ता जो इस प्रकार शांति के पुजारियों पर अन्यान्य धर्मवालों का अत्याचार होरहा है।

सोगये हो चीरसागर में कहां भगवान तुम।
अपने भक्तों पे नहीं देते प्रकट हो ध्यान तुम॥
ये तुम्हारी धर्म नौका है उबारो आनकर।
आन हो तो आनमें डूबों को तारो आनकर॥

[गङ्गाराम से] उठो वीर बालक उठो, तुम अपवित्र नहीं हुए हो। कंठी टूट गई तो टूट जानेदो। उसके टूट जाने से तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं हुआ है। तुम अब भी वैष्णव हो और शुद्ध वैष्णव हो।

कंठीमाला, छापसब, हैं बाहिरी दिखाव।
सच्चा वैष्णव है वही, जिसमें सच्चा भाव॥

माधो०—तो महाराज कंठी टूट जाने से हर्जही क्या हुआ? हम अभी तुलसी इसके मुंह में डालकर वैष्णव बनाए लेते हैं।

कृष्ण०—हां, यही विचार वैष्णव संगठन को पायेदार बनाने वाले हैं। जाइये महन्तजी महाराज, इस धर्म प्रेमी बालक को आप अपनी राम कथा सुनाइये, राम मंत्र बताइये और रामजी का सच्चा भक्तबनाइये।

[सब का जाना]

❀ गाना ❀

वैष्णवो, तुमने कभी ये भी विचारा आजकल ।
है कहाँ वह धर्मकी उन्नत अवस्था आजकल ॥
जिस जगहथी धूम एकदिन रामराज्य बसंतकी ।
होती जाती है वहीं ऊजड़ अयोध्या आजकल ॥
आप तो श्रीराम से शुद्धात्मा बनते नहीं ।
चाहते हैं, नारियाँ बनजायें सीता, आजकल ॥
बस पढ़ेजाते हैं क़िस्से और कहानी रात दिन ।
कोई करता ही नहीं है ज्ञान चर्चा आजकल ॥
बढ़गया है धर्मके झगड़ोंका कुछ ऐसा विवाद ।
उठता जाता है जगत से भाईचारा आजकल ॥

(सब का जाना)

—०—

चौथा दृश्य

ऊषा का महल

ऊषा :—

गाना

अरे हाँ हाँ प्यारे, दरस दिखाय मोरे मन को चुराय गये.
अब कहाँ गये हो छुपाय ?
बाँकी झाँकी थी बिजली सम, चमकत गई बिलाय ।
अब हा हा कर कर तारे गिनकर सगरी रजनी जाय ।
अरे हाँ हाँ प्यारे ।

(स्वगत) नहीं आई, अब तक इस चातकिनी की प्यास बुझानेवाली, स्वाति की बूंद वह चित्रलेखा नहीं आई। क्या नहीं आयेगी ? (आश्चर्य से) हैं वामाङ्ग फड़कने लगा ? अवश्य आयेगी।

मेरी इस प्रेम खेती को फली फूली बनायेगी ॥
घटा बनकर वह आयेगी, हवा बनकर वह आयेगी ।

परन्तु, न जाने हृदय क्यों घबरा रहा है ? एक एक क्षण एक एक वर्ष के समान जारहा है। बताओ मेरे पिता सूर्य और चन्द्र ! चित्रलेखा तुम्हारी दोनों आँखों के सामने ही होगी। बताओ इस समय वह कहाँ हैं ? आकाश, तेरे ही उदर में वह मेरी प्यारी सखी छुपी हुई है, प्रकट करदे। वायु, तू ही उसकी ऐसे समय में साथिनी है, उसे इधर की राह बतादे:—

पंख न दिये विधाता तूने वरना मैं उड़ जाती ।
प्राणसखी के साथ साथ ही प्राण सखा को लाती ॥

आह, आज की रात्रि बड़ी ही बेचैनी की रात्रि है। निद्रा नहीं आती है। यह सुख शय्या काँटों की शय्या के समान दिखाती है। यह राजमहल की शोभा निर्जन वन के समान डराती है। (ठहर कर) नहीं आयेगी, अब तो यही मालूम होता है कि चित्रलेखा नहीं आयेगी ! तब, तब, सफेद सफेद दीवारो, तुम चट्टान बन जाओ, मैं सिर फोडूंगी। अँगूठी के हीरे, तू काल बनजा, मैं तुझे मुखमें डालूंगी। झूले की रस्सी ! तू यमपाश बनजा, मैं आज तुझे पकड़ कर आखिरी बार झूलूंगी :—

वह झूला झूलते दिल को मेरे झोंके जो देता है।
झुलाने के बहाने मेरे मन को मोह लेता है ॥

उसे फाँसी बनाऊँगी मैं अपनी फाँस खोने को।
ज़रा सी झोंक में इस विश्व से आज़ाद होने को॥

नहीं, मैं भूली। झूले तक जाने की ज़रूरत ही नहीं है। मेरी ये बड़ी बड़ी लटें ही फाँसी का काम करेंगी।

लट तू देती रही है नित्य मुझे आनन्द।
उलट पुलट होकर तुही, काट मेरे सब फन्द॥

[आत्मघात की चेष्टा करना]

चित्रलेखा—[अंतरिक्ष से] ठहर, ठहर, प्रीतम के विरह में प्राण देने वाली वियोगिनी, ठहर।

ऊषा—(आश्चर्य से) हैं यह किसकी आवाज़ है? माता पार्वती की या सखी चित्रलेखा की?

(चित्रलेखा का अनिरुद्ध के पलंग सहित आकाश मार्ग से उतरना)

चित्रलेखा:—

अब न छोड़ेगी तुझे यह प्रेम की प्यासी तेरी।
आरही है गंगधारा की तरह दासी तेरी॥

ऊषा—आरही है, आरही है, सखी आरही है। सखी नहीं आरही है, ज़िंदगी आरही है!

चित्र०—(नीचे आकर) राजकुमारी, बधाई।

ऊषा—सखी, मैं आज तेरी ऋणी होगई हूँ:—

बाप ने पाला था मुझको अपनी बेटी जानकर।
दासियों ने सुख दिया था राजपुत्री मानकर॥
माँ भवानी ने दिया वरदान चेरी जानकर।
पर पिलाया तूने अमृत सूखी खेती जानकर॥

[आगे बढ़कर और पलंग पर सोते अनिरुद्ध को देखकर] अहा—

स्वप्न में अपनी मधुर मूर्ति दिखानेवाले ।
मेरे सीने से मेरे दिल को चुरानेवाले ॥
यह ही तो हैं मेरी बिगड़ी के बनानेवाले ।
आगये आगये मुर्दे को जिलानेवाले ॥

जगादो, बहन चित्रलेखा, मेरे सोते हुए भाग्य को जगादो।

चित्र०—सखी, इतनी व्याकुल न हो, वह स्वयं ही थोड़ी देर में जग जायेंगे। अगर हम उन्हें जगायंगे तो वे तकलीफ़ पायेंगे।

ऊषा—ऐसा है तो मत जगाओ। मैं उनके जागने तक इंतिज़ार करूंगी! चकोर की तरह अपने चन्द्रमा को दूर ही से प्यार करूंगी।

चित्र०—धन्य, यही तो प्रेम की चरम सीमा है।

ऊषा—अहा, कैसी अच्छी केशावलि है! मानो घटाओं की पंक्ति चन्द्रमा को छुपाने के लिए आकाश-मण्डल पर मण्डला रही है। ग्रीष्म ऋतु में धूप की तपिश से काले होजाने वाले हिरनों के समान स्याह बालो, मैं तुम से लड़ूंगी। तुम्हारे बोझ से मेरे प्यारे को कहीं तकलीफ़ न पहुंचे :—

नाग क्यों बैठा उधर तू कुण्डली मारे हुए।
खेलते हैं तेरे आगे तेरे ही मारे हुए॥

चित्र०—प्रेम के दो अक्षरों ने, प्यारी को कविशिरोमणि बना दिया।

ऊषा—हाँ, देखो न बहन चित्रलेखा, मैं झूठ नहीं कहती हूं। बन्द आँखों के ऊपर यह दोनों भौंहें ऐसी मालूम होरही हैं मानों दो भौंरी कमलिनियों के खिलने का इन्तिज़ार कर रही हैं। जगादो, बहन जगादो, कुछ हो, इन्हें जगा दो।

चित्र०—अच्छा तुम उधर हटो। मैंने जिस मंत्र द्वारा इसको घोर निद्रा में पहुंचा दिया है, वह मंत्र उतारती हूं।

[मंत्र उतारने की क्रिया करती है।]

ऊषाः—

खिलजाओ कलियो खुलखुल कर बुलबुल तू तान उड़ा अपनी।
सूर्योदय होने वाला है, मृदुवंशी वायु बजा अपनी॥

चित्र०—चलो सखी, अबजरा छुपकर इनकी लीला देखें।

(दोनों छिपजाती हैं।)

ऊषा—ओ हृदय जरा तो धीरजधर, क्यों बना डोलनेवाला है।
जो चित्र देखने तक ही था, वह आज बोलनेवाला है॥

अनि०—[जागकर आश्चर्य से] हैं! मैं कहाँ ?

ऊषा—मैं कहूं तो ठीक है यह—मैं कहाँ ?
तुम यहाँ हो, तुम यहाँ हो, तुम यहां।

अनि०—[स्वगत] पलंग तो वही है, परन्तु महल वह नहीं है। और मैं ? मैं भी वह हू या नहीं ?

सोने का वह है कहाँ अपना शयनागार।
यह मन्दिर तो है किसी नृप का रत्नागार॥

समझा, मैं स्वप्न में हूं, फिर सो जाऊँ।

चित्र०—नहीं, जाग्रत अवस्था में हो, अब मत सोओ।

अनि०—[आश्चर्य से] हैं! यह तो किसी मनुष्य की आवाज आई। कौन है ? कौन बोलता है ? कौन मुझे सोने के वास्ते मना करता है ?

ऊषा—बहन चित्रलेखा, मुझसे तो अब नहीं छुपाजाता:—

सुना है वह पुजारी देवता का गान गाता है ।
यहाँ तो देवता ही खुद पुजारी को बुलाता है ॥

अनि०—बोलो, बोलो, मैं कहां आया हूं ?

ऊषा—जहाँ आना चाहिये था, वहाँ आये हो:—

किसी के मनमें आये हो किसी के नैन में आये ।
प्रभो तुम चैन बन, करके दिले बेचैन में आये ॥

(चित्रलेखा सहित ऊषा का प्रकट होना)

अनि०—हैं ! तुम, तुम………

ऊषा—हाँ, तुम, तुम………

अनि०—कोई स्वर्गीय प्रतिमा हो ?

ऊषा—कोई स्वर्गीय देवता हो ?

चित्र०—

न देवता है न कोई प्रतिमा, न कोई प्यारा न कोई प्यारी ।
हैं सूरतें एक प्रेम की दो, उधर तो नर है इधर है नारी ॥

अनि०—देवी, वास्तव में तुम कोई स्वर्गीय सुन्दरी हो, इन्द्राणी हो, रति हो या ब्रह्मा की सर्व श्रेष्ठ पुत्री हो ।

ऊषा—देव, वास्तव में तुम कोई स्वर्ग के देवता हो, इन्द्र हो, काम हो या ब्रह्मा की सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ पुरुष हो ।

चित्र०—(स्वगत) दोनों पागल । [प्रकट] बहन ऊषा, होश में आओ । तुम्हारे सामने खड़े हुए देवता इसी भूमि के रत्न हैं । द्वारिकानाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पौत्र राजकुमार अनिरुद्ध हैं ।

ऊषा—हैं ! क्या ये द्वारिकाधीश के पौत्र हैं ?

चित्र०—और अनिरुद्ध जी महाराज, आपके सामने खड़ी

हुई बालिका राजराजेन्द्र श्रीबाणासुर महाराज की प्यारी और इकलौती बेटी राजकुमारी ऊषा है।

अनि०–ऊषा है, हाँ सचमुच ऊषा है :—

जब सचमुच सम्मुख ऊषा है तो अंधकारमय रातगई।

जब रातगई तो प्रात हुआ, झूठी सपने की बात गई॥

अच्छा तो फिर मैं यहाँ कैसे आया?

ऊषा–मैंने बुलाया!

चित्र०–मैं लाई।

ऊषा–दिल ने खेंचा!

चित्र०–मंत्रशक्ति ले आई :—

सपने में आपने जो मधुर मूर्ति दिखाई।

प्यारी के धीर चित्त पै बिजली सीगिराई॥

तत्काल चित्रलेखा यह तब आंधी सी धाई।

बादल की तरह आपको लेकर यहाँ आई॥

अनि०–यह खूब रही, ऐसी सुन्दर मूर्ति और ऐसी माया फैलाई?

ऊषा–इतना भोला चेहरा और इतनी चतुराई :—

अनि०–पराई चीज चोरी से चुराना इसको कहते हैं।

बिना जादूगरी जादू दिखाना इसको कहते हैं॥

ऊषा–किसी को स्वप्न में आकर सताना इसको कहते हैं।

लगाकर आँख फिर आँखें दिखाना इसको कहते हैं॥

अनि०–अच्छा मैं हारगया देवी.

ऊषा-जानेदो दासी हारी यह।

चित्र०-तुमभी जीते, तू भी जीती...

तुम इनके और तुम्हारी यह ।

अनि०-भई वाह, इस नगर की नारियाँ तो खूब गले पड़ू हैं

चित्र०-और द्वारिका के मनुष्य गलेपड़ू नहीं हैं ?

जिसका बाबा जन्म से है माखन का चोर ।
उसका नाती क्यों नहीं, होगा मन का चोर ॥

अनि०-परन्तु मैंने चोरी कब की है ?

ऊषा-बहन चित्रलेखा, इनका अपमान मत करो ।

चित्र०-[स्वगत] धन्य रे प्रेम, तूने ऊषा को कितना ऊंचा बना डाला है ! [प्रकट] राजकुमार तुमने चोरी की है :—

सपने ही सपने में तुमने मनकी मनहर चोरी की है ।
हमने तो डाका डाला है तुमने छुपकर चोरी की है ॥

अनि०-स्वप्न की बात भी कहीं पायदार होती है ?

चित्र०-होती है, यह इस महल से पूछो, इस महल की मालकिनी के दिलसे पूछो, और अब द्वारिका से लेकर शोणितपुर तक की मंजिल से पूछो ।

अनि०-हां अब मुझे भी ध्यान आया । मैंने भी कुछ इसी प्रकार का स्वप्न देखा था:—

ख्वाब की देखी हुई तस्वीर अब तक़दीर है ।

ऊषा०-बस वही तक़दीर मेरे ख्वाब की ताबीर है ॥

अनि०-(स्वगत) अहा प्रेम, प्रेम, प्रेम की धारा दोनों ओर है । मैं तो समझता था कि प्रेम मेरी ही ओर है, परन्तु दूसरी ओर से भी एक स्रोत बह रहा है । मैं तो समझता था कि

प्रेम के इस खेल में मैं इस बाला से आगे निकल जाऊँगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ, यही मुझसे आगे निकल गई ।

ऊषा०—(स्वगत) मुझे ऐसा प्रतीत होरहा है कि मैं एक रूपसुधा का पान कर रही हूं । सोमरस के पीने से जैसे मनुष्य के दिल में ताज़गी और एक नई ताक़त सी आती है, उसी प्रकार यह देह मतवाली सी होती जाती है ।

अनि०—देवी ।

ऊषा०—देवता !

अनि०—मैं तुम्हारा होगया ।

ऊषा०—और मैं तुम्हारी होगई, ।

चित्र०—प्यारी प्यारा होगई, और प्यारा प्यारी होगई ।

देखो, बादल उमड़ने लगे, बिजली चमकने लगी, पपीहो की पिउ पिउ और कोयलियों की कूक मजबूर करती है कि प्रिया और प्रियतम इस समय प्रथम मिलन के सिलसिले मे झूले पर झूलने के लिये विराज जायें और हम सब सखियां प्रेम पूर्वक झुलायें। अरी, माधुरी, सरस्वती, मनोरमा और प्रभा, तुम सब कहा चली गईं ? आओ, प्यारी और प्यारे को झुलाओ !

(ऊषा-अनिरुद्ध झूले में बैठजाते हैं चित्रलेखा झुलाती है)

सब सखियाँ०—

गाना

झुलाओ सब सखियाँ प्यारी को झूला झुलाओ ।
झूम झूम, झुक झपट, झकाझक झक झार झोंक झुकाओ ।
सर्वांग सुन्दर सलोने सुरों से सावन सुहावन सुनाओ ॥

(त्रयासुर का आना)

बाणासुर०—(आश्चर्य से) हैंय, झूले पर झूल रहा है ! मेरी ध्वजा ने गिर कर मुझे यह भेद बता दिया है कि मेरा बैरी मेरे ही महल में झूले पर झूल रहा है। अच्छा, ठहर तो सही, मैं अभी तुझे झूला झूलने का मजा चखाता हूं।

देखूं अब कैसे झूलेगा और कौन झुलाएगा झूला।
गुस्से से मेरे, फांसी का फन्दा बन जायेगा झूला॥

सिपाहियो ! क्या देख रहे हो ! आगे बढ़ जाओ और इस झूला झूलनेवाले को जंजीरों के झूले में झुलाओ।

[ऊषा का बाणासुर के पास दौड़ते हुए आना]

ऊषा०—ठहरिये पिता जी

(बाणासुर का ऊषा को धक्का देना और चित्रलेखा का उसे सम्हालना, सिपाहियों का अनिरुद्ध को गिरफ्तार करना)

—०—

दृश्य पांचवां

(स्थान—महन्त माधोदास का मंदिर)

[माधोदास का गङ्गाराम के साथ प्रवेश]

माधो०—सुन बच्चा गङ्गाराम, तू अब गुरूजी का सेवक और गद्दीजी का चेला बनाया जाता है।

गङ्गा०—कृपा है, गुरुजी की यह बड़ी कृपा है।

माधो०—आज से तेरे भेख का नाम गङ्गाराम के बदले गङ्गादास होता है, समझा ? अब खूब गुरुजी की सेवा बजाना और मालपुए उड़ाना।

गङ्गा०—जो आज्ञा गुरूजी महाराज !

माधो०—और सुन, गुरूजी के बताए हुए पञ्चकर्म आज ही से याद करले। उन्हें भूल न जाना।

गङ्गा०—वह पञ्चकर्म कौनसे हैं गुरूजी महाराज ?

माधो०—वह पञ्चकर्म यह हैं—

(१) प्रथम ठाकुरजी के और रसोईजी के वर्त्तनजी को मांजना।

(२) दूसरे गृहस्थियों से रोज भिक्षाजी को माँग कर लाना।

(३) तीसरे रसोईजी को बनाना और सन्तोंजी के लिए खिलाना।

(४) चौथे चिलमजी को भर कर गुरूजी को पिलाना।

(५) पांचवें कोई चेलाजी या चेली जी आये तो उसे गुरूजी के पास ले आना।

गङ्गा०—बस गुरूजी, यही पंचकर्म हैं।

माधो०—हाँ बचा पंचकर्म तो यही हैं, पर भेलजी की वाणी जी के कुछ शब्द और भी हैं जिन्हे खूब याद करले।

गङ्गा०—वे शब्द भी बतादीजिए गुरूजी।

माधो०—अच्छा तो उन शब्दों को भी सुन। जो कोई इन शब्दों पर विश्वास नहीं करता है वह घोर नर्क में जाता है। यह शब्द भण्डार बहुत गुप्त है। हर एक आदमी को नहीं बताया जाता है।

गङ्गा०–हाँ, तो इस सेवक के लिए वह शब्द भण्डार भी प्रकट करदीजिए गुरूजी महाराज।

माधो०–अच्छा तो सुन, आज से रसोईजी को राम रसोई कहना, नमक को रामरस कहकर बोलना। दाल चाहे उड़द की हो या मूग की–सब को राम बैकुंठी बताना। लालमिर्च का नाम राम तड़ाका और प्याज़ का नाम रामलड्डुआ कहकर जताना। समझा ?

गङ्गा०–समझा गुरूजी महाराज। तो क्या आप प्याज़ भी खाते हैं ?

माधो०–चुप मूर्ख ! प्याज़ नहीं, रामलड्डुआ खाते हैं।

गङ्गा०–वाह गुरुजी महाराज, यह तो आपने खूब गुप्त भण्डार दिखाया। परन्तु इन सब चीजों के पहले राम का नाम क्यों लगाया ?

माधो०–रामजी के नाम से उन चीज़ों का अशुद्ध भाग जब शुद्ध बनाया जाता है तब वह राम रसोई जी में लाकर रामप्रसादीजी के नाम से खाई जाती हैं। और सुन—

गङ्गा०–कहिए गुरुजी महाराज।

माधो०–जो कोई तुझसे तेरे भेख का नाम पूछे तो इस प्रकार बताना–"मेरे भेख का नाम सब सन्तों का दिया हुआ रामजी के आसरे गङ्गादास है। हम विवाहजी नहीं करते, परन्तु चेलीजी रखसकते हैं। चेलीजी से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह सयोगीजी कहलाती है"।

(गौरीगिरि का वैष्णव वेष में आना)

गौरीगिरि०-(स्वगत) वही है, वह गङ्गाराम नामवाला बालक यही है। वैष्णवों के अखाड़े से इसे उड़ालेआने ही के वास्ते इस गौरीगिरि ने आज गौरीदास का वेश बनाया है। (प्रकट) जय सीताराम सन्तो जय सीताराम ।

माधो०-जय सीताराम, बच्चा जय सीताराम। बैठो भक्त-राज, आजसे हमारे प्यारे शिष्य जी श्रीगङ्गादास जी श्रीरामायण जी का श्रीसत्संग जी सीखेंगे। तुम भी सुनो।

गौरी०-जो आज्ञा ।

(ध्यान मग्न होकर माला जपने लग जाता है ।)

माधो०-

नभप्रदेशमाच्छाद्य घनाः गर्ज्जन्ति निष्ठुराः ।
एतत्काले पुआहीनं क्लेशमाप्नोति मे मनः ॥

बेटा यह कींचकन्धा काण्ड के आगे की कथा है। लङ्काजी में ताड़िका नाम का एक पहाड़ है। वहाँ श्रीराम जी जब पहुंचे तो बरसात जी आरम्भ होगयीं। उस समय घन नाम के वानर से श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि भाई घना, नभ कहिए आकाश सो निष्ठुर होकर गरज रहा है। ऐसे समय में मेरा मन पुआ के बिना क्लेश को प्राप्त होरहा है। वर्षा में राम जी का मन गरम गरम पुआ खाने को चाहने लगा था। बन में पुआ मिले नहीं सोई क्लेश होता भया,-समझा बच्चा गङ्गादास ?

गङ्गा०-समझा गुरूजी ।

माधो०-

तथाऽखिलेषु मेघेषु चञ्चला चञ्चलायते ।
शैवानां दुष्टशीलानां मतिर्जाता यथाऽस्थिरा ॥

काले काले बादलों में चञ्चला जो बिजली सो थिर नहीं रहती। जैसे दुष्टशील अर्थात् दुष्ट स्वभाव वाले शैवों की मति।

वृष्टि-बिन्दु-जलाघातं सहन्ते पर्वतास्तथा।
यथा वै कटुवचनानि शैवानां वैष्णवाः जनाः॥

आकाश से होनेवाली वृष्टि की बूंदों के जलाघात को पर्वत इस तरह अपने ऊपर सहलेते हैं जैसे वैष्णव लोग शैवों के कटु वचन सहा करते हैं।

(कृष्णदास का सरयूदास और गोमतीदास के साथ आना)

कृष्ण०—(धीरे से) भाई गोमतीदास, छिपकर देखो कि महन्त जी महाराज गंगाराम को ठीक ठीक उपदेश दे रहे हैं या पहले की तरह आज भी गड़बड़ घोटाले का सत्संग कर रहे हैं।

(तीनों का छिपकर सुनना)

माधो०—

रुवताः बहु मण्डूकाः घोषयन्ति समन्ततः।
येन केन प्रकारेण परद्रव्यं समाहरेत्॥
जलानि भूपतितानि तथा यान्ति सरोवरे।
यथाशिष्याः गुरुपिण्डाः गच्छन्ति गुरु सन्निधौ॥

(गौरीगिरि आंखें खोलकर देखने लगता है)

गौरी०—सीताराम ! सीताराम !!

माधो०—सुनो भक्तराज, बरसात में सब ओर घास ही घास होगयी तो उसे रामजी ने अपने बाण से मेट दिया। तब दादुरवा सार अस बोले लाग जस 'राम रुपैया' बोलत है।

कृष्ण०—(स्वगत) हैं अभी तक वही गन्दे विचार ! धिक्कार धिक्कार !! (साभिनय) रामजी के अच्छे भक्तो, आंखें खोलकर

पहले उस तरफ देखो। तुम्हारे धर्म के कमजोर खम्भे ऐसे ही ऐसे नाम मात्र के साधु हैं। इसलिए आइये—

पहले अपने आप को बलवान् करना चाहिए ।
तब पराये गेह में प्रस्थान करना चाहिए ॥

(नेपथ्य से)—गुरूजी महाराज, गुरूजी महाराज ।

माधो०—बच्चा गङ्गादास, देख तो बाहर जाके कौन पुकारता है ।

(गङ्गादास का जाना)

माधो०—(स्वगत) अब यह बचा पाठ पढ़कर ठीक बन गया है, गुरू जी की खूब सेवा करेगा ।

(गङ्गादास का आना)

गङ्गा०—(पास जाकर माधोदास से) गुरूजी महाराज, एक गुप्त बात है। गुप्तवाणी के अक्षरों में कहता हूं ।

माधो०—कहो कहो जल्दी कहो बच्चा, क्या बात है ?

गङ्गा०—एक रामप्रिया जी आयी हैं। (राम प्रिया का नाम सुन कर माधोदास का प्रसन्न होना)

माधो०—अच्छा तो तू यहीं ठहर, मैं अभी उसको राम उपदेश जी देकर आता हूं। (जाता है) ।

गौरी०—(स्वगत) यही समय है कि इस गङ्गाराम को उठाऊं और अपने शैव अखाड़े की ओर ले जाऊँ। (प्रकट) क्यों बे ! उस रोज तो तू भाग आया था अब कहाँ जायगा ?

गङ्गा०—(आश्चर्य से) हैं वैष्णवभेश में तुम गौरीगिरि नागा-वाले शैव हो ?

गौरी०—हां, हम वही तुम्हारे सिरतोड़ औषध हैं। (गङ्गादास को पकड़ने के लिए बढ़ता है)

गङ्गा०—(चिल्लाकर) अरे बचाओ बचाओ, गुरूजी मुझे इस दुष्ट से बचाओ ।

कृष्ण०—(प्रकट होकर) न घबराओ बेटा न घबराओ ।

माधो०—(प्रवेश करके) क्या है ? क्या है ??

गौरी०—(कांपकर) अरे बाप रे यहाँ भी वही महाकाल के महापुजारी आगए !

कृष्ण०—(गौरीगिरि से) देखो शैव सम्प्रदाय के पुजारी, तुम्हारा आज का दुराचार न केवल अप्रसन्न होने योग्य बल्कि धिक्कारने योग्य है । हमें संतोष होगा कि तुम शैव होने पर भी सच्चे शैव बने रहोगे, दूसरे के धर्म पर आक्रमण न करोगे और किसी को क्लेश न पहुंचाओगे:—

है काम नीचता का औरों का माल तकना ।
अपने सुखों की खातिर औरों के सुख को हरना ॥
जीते ही जी नरक में यों नारकी हो सड़ना ।
अपने ही भाइयों में यों मरना और कटना ॥
मजहब नहीं सिखाता आपुस में वैर रखना ॥

गौरी०—धन्य महाराज, आज मुझे आपके आशीर्वादसे सच्चा बोध होगया । अब मैं आपके बताए हुए मार्ग पर ही चलूंगा । अपने अब तक के अपराधों की क्षमा चाहता हूं । (प्रणाम करता है ।

कृष्ण०—उठो, भाई उठो (यह कह कर गौरीगिरि को गले से लगाते हैं, फिर माधोदास से कहते हैं) क्यों महन्त जी महाराज, अभी तक आपने अपना ही सुधार नहीं किया तो फिर इस लड़के को कैसे सुधारिएगा ?

माधो०—वाह, सुधार कैसे नहीं किया ? थोड़ी देर पहले आप आते तो मालूम होता कि मैं अब रामायणजी का आधा सल्लोक पुरानी रीति पर कहता हूं और आधा नई रीति पर।

कृष्ण०—क्या खाक नई रीति पर कहते हो ! मैंने छिपे २ सब कुछ सुनलिया है। मेरा कहना यह है कि आप रामायण के ही श्लोक कहिए और उनका शुद्ध अर्थ करिए। साथ ही, अपने चरित्र को भी बनाइये, विद्या की अग्नि में अविद्या के कूड़े को जलाइए। तब आप वैष्णव कहाने के अधिकारी और जाति के सच्चे पुजारी होंगे। क्योंकि—

पहले अपने आपको, जो निर्मल करलेय।
वह ही इस संसार को, सच्ची शिक्षा देय॥

माधो०—धन्य महाराज, आपके उपदेश से आज मेरे नेत्र खुलगए और अभ्यंतर के समस्त विकार धुलगए। अब मैं अपना और भी सुधार करूंगा। रामायणजी में कहा है कि—

कोऽपि दोषःसमर्थानां अस्मिल्लोके न विद्यते।
त्वञ्चाऽहं वै समर्थौस्तः आचरेव यथारुचिम्॥

अर्थात् इस संसार में सामर्थ्यवान् जो चाहे सो करे, उसे दोष नहीं लगता। सो हम और आप भी चाहे जो कुछ करें क्योंकि हम और आप सामर्थ्यवान् हैं।

कृष्ण०—खेद, अब भी तो आप अपने अण्ड बण्ड श्लोकों का ऊटपटाँग अर्थ थांगेही जाते हैं। अच्छा जाइए और सब अखाड़े को साथ लेकर मेरे पास आइए। मैं आप से वैष्णव धर्म का प्रचार अपने निरीक्षण में कराऊंगा।

[महन्त माधोदासका सबको साथ लेकर अखाड़े की ओर चलेजाना और कृष्णदास का अकेला रह जाना।]

कृष्ण०—[ऊपर को विनीत भाव से देखते हुए] दीननाथ, बहुत होगया। अब शैव-वैष्णवों ही के नहीं, सारे संसार के झगड़ों का नाश करके विश्व-प्रेम फैलाइए और अपने प्रेम के सागर में सारे संसार को नहलाइए—

❀ गाना ❀

फिर से इस देश को तू अपना बनाले आजा।
नाव मंझधार में है नाथ बचाले आजा॥
दर बदर तेरे बिना ख़्वार फिरा करते हैं।
अपने गिरते हुए भक्तों को उठाले आजा॥
द्वेष-रावण ने तेरे विश्व को फिर खाया है।
अपना वह बाण-धनुष शीघ्र चढ़ाले आजा॥
रोशनी के बिना अंधे हैं जगत के वासी।
इनकी आँखों में ओ आंखों के उजाले आजा॥

(चलजाना)

—o—

छठा दृश्य
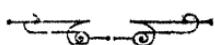
(महाराज उग्रसेन का दरबार)

उग्रसेन—क्यों उद्धव, तुम्हारा क्या ख़याल है? प्रजा अब पहले से अधिक सुखी है या नहीं?

उद्धव—क्यों न सुखी होगी! जिस प्रजा ने कंसके अत्याचार सहे हों क्या वह ऐसा राज्य पाकर भी सुखी न होगी?

उग्र०-परन्तु उद्धवजी, राजा को खुद कभी सुख और चैन नहीं होता है। ताज और तख्त ये दोनों चीजें बेचैनी की बुनियाद पर रक्खी हुई हैं।

उद्धव-परन्तु कब? जबकि अधर्म उस राज्य का लक्ष्य हो, अन्याय उस राज्य का मन्त्र हो। वाल्मीकीय रामायण में हमने पढ़ा है कि रघुकुल के राजाओं में सर्वदा शांति रही है। परन्तु रावण मे सदा अशान्ति रही है :—

उसे डर था प्रजा सर पै न चढ़जाए कहीं तनके।
मेरे क़ानून मेरे हैं, प्रजा के हैं नहीं मनके॥

उग्र०—हाँ, यह ठीक है। रावण को अपने बलपर बड़ा अभिमान था। अपने अभिमान ही मे वह छोटे छोटे निर्दोष राजाओं का खून चूसा करता था। प्रजा के दीन हीन परन्तु धर्म के सच्चे पुजारियों को अत्याचार के बेलन से पीसा करता था।

उद्धव:-इसीलिए तो उसका नाश हुआ और धर्मवीर रघुकुल के सूर्य का प्रकाश हुआ:-

आपकी गद्दी तो है महाराज गद्दी धर्म की।
इस मुकुट की सर्वदा रक्षक है शक्ती धर्म की॥

[सुबुद्धि का प्रवेश]

सुबुद्धि:-राजराजेन्द्र, बड़ा गजब होगया! बड़ा उत्पात होगया!

उग्र०:-[घबराकर] क्या वज्रपात होगया?

सुबुद्धि:-राजकुमार अनिरुद्ध अपने महल से ग़ायब हैं। वही नहीं उनका पलंग तक ग़ायब है।

उग्र०:–और तुम अब दरबार के समय यह खबर सुनाने आये ? अब तक कहाँ थे ?

सुबुद्धिः– राजकुमार को ढूढ रहा था ।

उग्र०:–वह कहीं नहीं मिले ?

सुबुद्धिः–नहीं महाराज ।

उग्र०:–यह तो बड़े आश्चर्य की बात है । पहरेपर कौन था ?

सुबुद्धिः–सुदर्शन !

उग्र०:-तो उस को बुलाओ, और उससे इस घटना का निर्णय कराओ । [सुबुद्धि जाता है] आश्चर्य पर यह दूसरा आश्चर्य है कि सुदर्शन के होते हुए यह घटना घट जाय ।

[सुबुद्धि के साथ सुदर्शन का आना]

उग्र०–क्यों सुदर्शनजी, अनिरुद्ध के महल में कल रात तुम्हाराही पहरा था ?

सुदर्शन–हाँ महाराज।

उग्र०–तो बताओ अनिरुद्ध कहाँ हैं ?

सुदर्शन–मैंने उन्हें महल ही में छोड़ा था ।

उग्र०–हैं ! छोड़ा था, छोड़ने का क्या कारण ? तुम्हारी तो वहाँ तईनाती थी ।

सुद०–हाँ महाराज, किन्तु आधी रात के बाद मैं वहां से चला आया !

उग्र०–क्यों ?

सुद०–राजकुमार की माताजी ने स्वयं आकर मुझसे यह फरमाया कि तुम्हें नारदजी बुलारहे है ।

उग्र०–फिर तुम वहाँ से हटगये ?

सुद०—हाँ महाराज, माताजी की आज्ञा मानकर हटगया।—

अगर यह दोष है मेरा तो मैं निर्दोष भी भगवन्।
सुदर्शन ने तो की तामील माँ के हुक्म की भगवन्॥

उग्र०—अच्छा तो तुम नारदजी के पास चलेगये ?

सुद०—हाँ महाराज।

उग्र०—वे तुमसे मिले ?

सुद०—नहीं महाराज।

उग्र०—तुम उन्हें ढूंढते रहे ?

सुद०—हाँ महाराज।

उग्र०—सारी रात ढूंढते रहे ?

सुद०—हां महाराज।

उग्र०—भोले, सीधे और विश्वासी पहरेदार तुम धोखा खागये। (सुबुद्धि से) क्या किसीने इस बातका भी पता लगाया है कि इन्हें वहाँ से हटानेवाली अनिरुद्ध की माता ही थीं या उनके वेष में कोई और माया थी ?

सुबुद्धि०—हां महाराज, इस बात की भी तहक़ीक़ात होचुकी है। राजकुमार की माता तो रात भर अपने शयन-मँदिर ही में रही थीं। वे तो वहाँ से उठकर भी नहीं गयी थीं।

उग्र०—तब तो यह बड़ी निराली घटना है। हमारे राज्य में ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ ! श्री मदनमोहन जी कहाँ हैं ? आज वे भी दरबार में नहीं आये !

उद्धव—[सामने देखकर] शायद वही सामने से आरहे हैं। संभव है कि इस विषय में वे कुछ जानते हों।—

कुण्डल पहने, पटका डाले वंशीवाले आते हैं ।
उजियाला अब होजायेगा जग उजियाले आते हैं ।।

[श्रीकृष्णचन्द्र का आना]

उग्र०—आइये, आइये, मदनमोहन जी आइये । आपने रात की घटना सुनी है ?

श्रीकृष्ण०—हां सुनी है ।

उग्र०—फिर उसका कुछ उपाय भी किया है ?

श्रीकृष्ण०—प्रद्युम्न को इस बात का पता लगाने के लिये मुकर्रर करदिया है ।

बलराम—और तुमने ? वंशीवाले तुमने ? तुमने आप इस घटना पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है ?

श्रीकृष्ण०—अनिरुद्ध यादववंश का वीर बालक है । कौन उसे धोखा देकर तकलीफ़ पहुंचा सकता है ? उसकी वीरता पर भरोसा करके ही मैं निश्चिन्त हूं ।

बलराम—वाहरी निश्चिन्ता, पौत्र ग़ायब होगया और आप अब भी निश्चिन्त हैं ।

उग्रसेन:—

इसे अवगुण समझते हो ? नहीं यह गुण है मोहन का ।
सुखों में या दुखों में एक रस रहता है मन इनका ।।

बलराम:—भैया कन्हैया, आज का तुम्हारा यह शान्तरस हमें नहीं सुहाता:—

बताओ तुम बताओ, वह नयन तारा कहाँ पर है ?
हमारा और तुम्हारा प्राण का प्यारा कहाँ पर है ?

श्रीकृष्ण:—अच्छा, यदि तुम नहीं मानते हो तो मैं नारद जी को स्मरण करता हूं। वह अभी आयेंगे और इस घटना पर प्रकाश डालकर उलझन सुलझायेंगे।

(श्रीकृष्ण के स्मरण करने पर नारद का गाते हुए आना)

नारद:—[गाना]

भजो रे मन राधा और गोविन्द।

उग्र०:—आइये, आइये, देवर्षि जी आइये। आपकी कृपा से हमारी चिन्तायें नसायेंगी और उलझी हुई कड़ियाँ सुलझ जायेंगी।

बलराम:—नारद जी महाराज, क्या आपने कल रात को किसी युक्ति द्वारा पहरे पर से सुदर्शन को हटाया था ?

नारद:—हाँ !

सबलोग:—[आश्चर्य से] हाँ ?

उग्र०:—यह कैसी आश्चर्यकारी बात है ?

नारद:—सुनिये मैं सब सुनाता हूं। शैवों के राजा महाबली वाणासुर की एक कन्या ऊषा है।

उग्र०:—है !

नारद:—उसकी सखी चित्रलेखा यहाँ आई और राजकुमार को लेगई !

बलराम:—और आपने चित्रलेखा को सहायता दी ?

नारद:—हाँ,

बलराम:—वह क्यों ?

नारद:—वही तो सुना रहा हूँ। वाणासुर बड़ा अत्याचारी और अभिमानी है। फिर भगवान शंकर से अजेय वर भी पाए

हुए, सहस्रभुजाओं का बल रक्खे हुए है। वह शैव होने के कारण अपनी वैष्णव प्रजा पर बड़ा अत्याचार कर रहा है। वैष्णवों के बच्चों को—नये नये क़ानून बनाकर—उसके यहाँ शैव किया जा रहा है, उनके कंठी-तिलक को नष्टकर तरह तरह से कष्ट दिया जारहा है। बेचारी वैष्णव स्त्रियों को चोरी और बरजोरी से शैव सम्प्रदाय में घसीटा जारहा है, वैष्णवों के विरुद्ध शैव धर्म का डंका पीटा जारहा है। स्त्री जाति का ऐसा अपमान आज तक कहीं देखने और सुनने में नहीं आया।

बलराम:—ओह, इतना अत्याचार? इतना बलात्कार? तब तो अवश्य उस पापी का मद हरण करना चाहिए। धर्म की रक्षा के लिये अधर्मी का सिर कुचलना चाहिए।

नारद:—इसीलिए तो मैंने चित्रलेखा को सहायता दी! यदि मैं उसको अनिरुद्ध की माता के वेश में यह कार्य सम्पादन करने की युक्ति न बताता तो सुदर्शन को उस स्थान से कैसे हटाता?

उग्र०—धन्य नारदजी, आपको भी धन्य है, और आपकी कृपा को भी धन्य है!

सुद०—अबतो सुदर्शन इल्ज़ाम से बरी होगया?

उग्र०—तुम मुलज़िम ही कब थे? (नारद से) अच्छा तो अनिरुद्ध इस समय वहाँ किस हाल में है?

नारद—कारागार के जाल में है!

बलराम—(चौंककर) हैं! कारागार में! हमारा पौत्र कारागार में! (उग्रसेन से) महाराज, अब नहीं रहाजाता है। ख़ून खौला जाता है। एकदम चलो, पौत्र अनिरुद्ध को छुड़ाने के लिए तैयार होजाओ:—

भस्म करदो चलके शोणितपुर को अब एक आनमें !
फ़र्क़ मत आनेदो यादववंश के अभिमान में ॥
मेरी छाती उस समय ही शांति पूर्ण पायगी ।
जबकि शोणितपुर में शोणित की नदी बहजायगी ॥

श्रीकृष्ण—भैया बलदाऊ, शान्त। शोणितपुर में शोणित की नदी बहाना ठीक नहीं। इस कार्य से वहाँ की प्रजा दुख पायगी। हमें राजा से लड़ना है न कि प्रजा से। इसलिए ऐसे समय में शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिये।

बलराम—मदनमोहन, यह तुम क्या कहते हो ! युद्ध में शांति ?

श्रीकृष्ण—भैया, शांति सब जगह काम देती है। बड़े से बड़ा योद्धा भी यदि युद्ध में शान्ति खो बैठेगा तो अपनी जीतसे हाथ धोबैठेगा ! देखो, सृष्टि ही को देखो। कितनी शान्तिपूर्वक अपना काम करती है। नित्य बीजसे वृक्ष और वृक्ष से बीज बनाती है और किसी को कानो कान भी इस रहस्य की खबर नहीं होने पाती है।

बलराम—तो क्या तुम्हारी यह राय है कि हम शान्तिपूर्वक घर में जाकर बैठजायें ?

श्रीकृष्ण—नहीं, अनिरुद्ध को छुड़ाने अवश्य जाइये, परन्तु शान्ति के साथ !……देखो ··महादेवजी अपने संहार कार्य का कितनी शान्ति के साथ करते हैं ? सबसे ज्यादा शान्ति अगर हम कहीं देखते हैं तो शमशान ही में देखते हैं:—

धनवान् के घर शांति का मिलता पता नहीं।
अभिमान जहाँ पर है वहाँ सुख जरा नहीं ॥

मिलती है कहीं पर तो ग़रीबों में शांती।
महलों में नहीं, पर्ण—कुटीरों में शांती॥

बलराम—सुनलिया, आपकी शांति का व्याख्यान। युद्ध करने में तो आप भी सहमत हैं, फिर देर किस बात की है? सब योद्धाओं को प्रस्थान करने की आज्ञा दी जावे।

उग्र०—उद्धवजी, आप और बलराम अपनी संरक्षता में यादव सेना को लेजाइये, और दुष्ट बाणासुर का मद चूर्ण करके अनिरुद्ध को कुशल और विजय सहित द्वारिका लाइये!

नारद—कुशल और विजय सहित ही नहीं श्री सहित भी!

सुद०—अर्थात्?

नारद—गृहलक्ष्मी सहित भी!

सुद०—हाँ, जब गृहलक्ष्मी आयेगी तभी तो नारदकला की विजय समझी जायगी।

बलराम—प्रद्युम्न को भी साथ लेजाइए?

उग्र०—नहीं, वह द्वारिका ही रहे। तुम और उद्धव ही काफी हो।

श्रीकृष्ण—उद्धवजी, देखिए, मेरे बताए हुए नियमों के अनुसार लड़िएगा। हमारा द्वेष राजा से है प्रजा से नहीं। प्रजा को कोई दुःख न दिया जावे। जो योद्धा सामने युद्ध करने आवे, उसीपर वार किया जावे। खेतपर काम करनेवाले किसानो की खेती ऊजड़ न की जावे। झोपड़ों में रहनवाले ग़रीबों को न सताया जावे। क़िलों को तोड़ने का पूरा प्रयत्न कियाजावे, परन्तु शिव मन्दिरों, पाठशालाओं और पुस्तकालयों को कोई हाथ न लगावे।

उद्धव०—ऐसा ही होगा।

श्रीकृष्ण—तो विजय के साथ यश का डङ्का बजाओ और अपने कार्य में पूरी सफलता पाओ।

❀ गाना ❀

जो धर्म्म पै दृढ़ है, जिसका स्वच्छ हृदय है।
कहते हैं वेद और शास्त्र, उसी की जय है॥
जिसने अपने कर्त्तव्य पै रण ठाना है।
जिसने पर कारज का पहरा बाना है॥
जिसने स्वजाति का मूल तत्त्व जाना है।
जिसने स्वदेश का गौरव पहचाना है॥
जो स्वाभिमान के कारण दीवाना है।
जो आन पै मर मिटने का मरदाना है॥
वह ही है रण बाँकुरा, और निर्भय है।
कहते हैं वेद और शास्त्र, उसी की जय है॥

—०—

सातवां दृश्य

(स्थान महल का एक भाग)

(ऊषा और चित्रलेखा का आना)

ऊषा—हाय, क्या कहूं! किस से कहूं?
थे मिले हुए दो फूल एक डाली के ऊपर खिले हुए।
ज़ालिम हाथों से दोनों ही टूटे और दममें जुदे हुए॥

चित्र०—प्यारी, धीरज धरो, इतना न घबराओ।

ऊषा—कैसे न घबराऊं? पशु पक्षी तक वियोग की वेदना से घबराते हैं, फिर मैं तो मनुष्य जाति में हूं?

चित्र०-तो क्या अपने पिता से लड़ोगी ?

ऊषा-लड़ने को जी तो चाहता है, परन्तु धर्म रोकता है। क्या करूं—

एक ओर पतिदेव दूसरी ओर पिता है ।
दो पाटों के बीच फंस रही यह ऊषा है ॥

चित्र०-मेरी राय तो यह है कि तुम अब अनिरुद्ध को भूल जाओ।

ऊषा-यह सबसे ज्यादा असंभव है।

चित्र०-क्यों ?

ऊषा-नारी धर्म की बात है !

चित्र०-वह बात क्या है ?

ऊषा-नारी एक बार भी जिसको अपना पति बना लेगी, उसी को पति समझती रहेगी। फिर दूसरे पुरुष की ओर दृष्टि डालना भी उस के लिए घोर पाप है। संसार में नारि जाति के लिए इससे बढ़कर दूसरा पाप नहीं होसकता।

एक बार जिसको वरा है वह ही भरतार।
झिंझरी नैया का वही पति है बस पतवार ॥

चित्र०-पर तुम्हारी और अनिरुद्ध की पहली मुलाक़ात तो स्वप्न की मुलाक़ात है।

ऊषा-यह तो और भी ऊंचे आदर्श की बात है। नारी यदि स्वप्न में भी किसी को स्वीकार करले तो उसे फिर दूसरे पुरुष से विवाह करने का अधिकार न होना चाहिए—

स्वप्न ही में उनको जब देखा तो उनकी होगई ।
वह मेरे स्वामी हुए मैं उनकी दासी होगई ॥
ऊषा अब अनिरुद्ध की अनिरुद्ध अब ऊषा के हैं ।
मिलगई दो गाँठ जब तब एक जोड़ी होगई ॥

चित्र०—तो याद रक्खो, तुम्हारे पिता बड़े जालिम हैं, वे किसी तरह यह सम्बन्ध नहीं होने देंगे ।

ऊषा—सम्बन्ध तो होचुका, अब उसे वे क्योंकर बदल देंगे ?

चित्र०—इतनी ज़बरदस्त अग्नि है ?

ऊषा—हाँ, यह अग्नि अब पत्थर के भीतर रहनेवाली वह चिनगारी नहीं है जो चोट खाके प्रकट होती है ।

चित्र०—तो ?

ऊषा—यह तो ज्वालामुखी होकर फूटी है !

चित्र०—फिर इसके बुझाने का साधन ?

ऊषा—प्रीतम का दर्शन ।

चित्र०—अच्छा तो तैयार होजाओ !

ऊषा—काहे के लिए ?

चित्र०—प्रीतम के दर्शन के लिए ।

ऊषा—क्या उस एकडंडी महल में, जहाँ मेरे प्राणनाथ कैद है—मुझे लेचलोगी ?

चित्र०—ले नहीं चलूंगी तो चलनेके लिए वैसे ही कहरही हूं?

ऊषा—परन्तु वहाँ तो नंगी तलवारों के पहरे हैं—

किस तरह उम्मीद जायगी मना के पास में ।

चित्र०—जिसतरह परवाना जाता है शमा के पासमें ॥

सुनो, मै आज रात्रि को अपने पिता के पास जाकर गिड़गिड़ाऊगी । वे इस राज के प्रधान मंत्री है, उनकी कृपा से व्योमयान माँग लाऊंगी ।

ऊषा--फिर ?

चित्र०--उसपर तुम्हे बिठाऊंगी।।

ऊषा--और ?

चित्र०--प्राणाधार के पास--एकडंडी महल मे--पहुंचाऊंगी ।

ऊषा--उपकार, तब तो तेरा अनन्त उपकार होगा—

पहले भी तूने ही नहलाया है उस जलधार में ।
अब भी पहुंचायेगी तूही मुझको उस दरबारमें ।।

गाना

कोई प्रीतम का दरस दिखाय दो रे ।
पिउ पिउ की रट करे पपीहो, हे घन प्यास बुझाय दो रे ।
जो चाहते हैं तुम्हारी ही चाह करते हैं ।
जो देखते हैं तुम्हीं पर निगाह करते हैं ॥
तुम्हारे तालिबे दीदार आह करते हैं ।
तुम्हारे वास्ते इतना गुनाह करते हैं ॥
तुम्हारी राह में खुद को तबाह करते हैं ।
बिछुड़ रहा बिरहिन का जोड़ा विधना वेग मिलाय दो रे ।

[दोनों का चले जाना]

—०—

आठवां दृश्य

(एकडराडी महल)

अनिरुद्ध–हाय, ऊषा, प्यारी ऊषा, तुम्हारे प्रेम-बन्धन मे बँधा हुआ यह अनिरुद्ध अब कारागार के बन्धन में बँधा हुआ है। यह बन्धन जितना तुच्छ है, उतना ही वह बन्धन पुष्ट और पवित्र है जिसमें यह वियोगी जकड़ा हुआ है:--

हम तो पहले से बंधे हैं प्रेम की तक़्सीर में।
और जुल्फोंसे जियादा कब है!इस जंजीर मे॥

बाणा०–[प्रवेश करके] सिपाहियो, मेरे शिकार को मेरे सामने हाजिर करो। [सिपाहियों का जाना]

बाणा०–[स्वगत] संसार की मिट्टी का एक घरौंदा, यह नहीं जानता है कि वह किस हिमालय के पाषाणोंसे टकराने को खड़ा हो रहा है। छोटा सा नाला यह नहीं समझता है कि वह किसी भयानक नद से कुश्ती लड़ने के वास्ते बढ़ता आरहा है—

खिलौने दोनों सूरज चाँद हैं जिसके जमाने में।
हिमालय और विन्ध्याचलहैं जिसके एक निशानेमें॥
उसी से खेलने को एक बालक सिर उठाता है।
तअज्जुब है कि जुगनू सूर्य से आँखे मिलाता है॥

[अनिरुद्ध का सिपाहियों के साथ आना]

क्यों ज़िद्दी लड़के, तुझे अपनी मौत का कुछ ख़याल है?

अनि०—मौत का ख़याल ? मौत का ख़याल उन्हें होता है जो दौलत के कुत्ते हैं, हिर्स और हविस के बन्दे हैं। सच्चे योद्धा और सच्चे धर्म-सेवक को मौत का नहीं विजय का और परमात्मा का ख़याल रहता है।—

एक दिन सब हैं इसी मग से गुज़रनेवाले।
मौत से डरते नहीं मौत से मरनेवाले॥

बाण०—पर तुझे तो मौत से नहीं बेमौत मारना है।

अनि०—यह तुम्हारा ख़याल है। कोई बेमौत नहीं मरता है। जो मरता है वह अपनी मौत से मरता है। शोणितपुराधीश, मैं तुमसे एक बात पूछता हूं।

बाण०—पूछो ?

अनि०—क्या तुम कभी नहीं मरोगे ? हमेशा जीते ही रहोगे ? अरे ग़ाफ़िल मुसाफ़िर, यादरख:—

क्यों झगड़ता है तू इसके और उसके वास्ते।
आज मेरे वास्ते तो कल है तेरे वास्ते॥

बाण०—अरे तू यह नहीं जानता है कि मैं राजा हूं ?

अनि०—राजा है तो क्या अमर होकर आया है ?—

यह है तेरा अंधपन, अज्ञान है, अविवेक है।
मौत के नीचे रिआया और राजा एक है॥

देख, रावण भी एक राजा था, तुझसे बढ़ा चढ़ा राजा था, परन्तु अत्याचार के कारण मृत्यु के बाद भी लोग उसे धिक्कारते हैं, राक्षस के नाम से पुकारते हैं। रावण का बल और उसका विस्तृत राज्य और अन्त में उसका सर्वनाश, भविष्य

के मानी और अत्याचारी राजाओं के लिए बतलागया है कि प्रजा की आह के सामने जालिम राजा का पत्थर सा कठोर धल भी बर्फ की नाईं पिघल जाता है, चट्टान सा भी अटल और अचल राज्य मिट्टी की ढाय के समान अहले के बेग से बह जाता है :—

गर तू राजा है तो राजापन को सीख—
गर तू योद्धा है तो योद्धापन को देख ॥
देखता है क्या मुझे अभिमान से—
पहले अपने पापवाले मन को देख ॥

बाणा०—लड़के, तू यह नहीं जानता कि तू मेरा चोर है ? तुझे सजा देना मेरा धर्म है । तुझे मेरे महल में घुसने का क्या अधिकार था ?

अनि०—वही अधिकार जोकि सूर्य के प्रतिबिम्ब को जल के प्रत्येक घड़े में होता है, वही अधिकार जो कि हवा के झोंके को प्रत्येक खुली हुई खिड़की के मार्ग में होता है।

बाणा०—इसका स्पष्ट अर्थ ?

अनि०—मैं नहीं बता सकता, तेरी पुत्री बतायगी :—

शुद्ध प्रेम के भाव को क्या समझेगा नीच ।
गङ्गारज की शान को, पहुंच न सकती कीच ॥

बाणा०—तो क्या मैं कीच हूं ? अगर मैं कीच हूं तो ऊषा कौन है ?

अनि०—कीच में उत्पन्न होनेवाली कमलिनी :—

अवतीर्ण असुर के हुई सुर बाल आनकर।
धूर में जन्म लेता है ज्यों लाल आनकर।

बाण०--छोकरे, तू यह भी जानता है कि तू किसके आगे खड़ा हुआ है ?

अनि०--हां, जानता हूं । मैं इस नगरी के तुच्छ राजा बाणासुर के सामने खड़ा हुआ हूं ।

बाण०--वह बाणासुर जिसने शिवजीकी बड़ी तपस्या की।

अनि०--हां, वह बाणासुर जिसने अपनी प्रजा पर बड़ी हिंसा की।

बाण०--वह बाणासुर जिसने अपने तप से शिवजी को प्रसन्न किया और वरदान पाया।

अनि०--हाँ, वह बाणासुर जो तप करके इतराया। अपने इष्टदेव पर ही लड़ने को धाया। तब अंत में वरदान के बहाने अभिमान चूर्ण होने का प्रसाद पाया :—

नहीं कुछ मर्तबा तू जानता है देवताओं का।
किसीने पार भी पाया है ऊंची आत्माओं का॥
तेरा अभिमान दलने को यहाँ मुझको पठाया है।
मै उनका अंश हूं और तेरी ऊषा उनकी माया है॥

बाण०--यह बालक अवश्य वध करने योग्य है।

अनि०--यह राजा अवश्य दंड के योग्य है।

बाण०--इतना छोटा मुंह और इतनी बड़ी बातें !

अनि०--इतना बड़ा मुंह और इतनी छोटी बातें !

बाणा०—अच्छा, अब तू मुझे यह बता कि तू किसका पुत्र है !

अनि०—महाराज प्रद्युम्न का पुत्र !

बाणा०—कौन प्रद्युम्न? उस माखनचोर कृष्णका बेटा प्रद्युम्न?

अनि०—हाँ, उन योगीराज श्रीकृष्णचन्द्र का बेटा प्रद्युम्न, जिन्होने तेरे मित्र कंस को मारकर संसार को दु:खो से उबारा था।

बाणा०—मेरे सामने उस ग्वाले की इतनी बड़ाई! अरे छोकरे, तूने कहाँ से सीखी है इतनी ढिठाई ?

अनि०—यह निर्भयता मैंने तेरे ही कुल के रत्न भक्त प्रह्लाद का जीवन-चरित्र पढ़कर सीखी है ।

बाणा०—प्रह्लाद का नाम मेरे सामने लेना बेकार है । वह वैष्णव न था ।

अनि०—तो तेरे आगे प्रह्लाद के बाप हिरण्यकशिपु का नाम लूं जिसको स्वयं भगवान् विष्णु ने नरसिंह रूप धारण करके सहारा था ।—

नाम जिन श्रीकृष्ण का संसार में मजबूत है ।
यह बली अनिरुद्ध उनके वंश का ही पूत है ॥

बाणा०—अरे कौन कृष्ण ! उन्हीं कृष्ण की बड़ाई करता है जो ब्रज की ग्वालनियों के साथ खेले थे ?

अनि०—हाँ, मैं उन्हीं श्रीकृष्ण का वर्णन कर रहा हूं जिनके रासमण्डल में स्वयं भगवान शंकर भी आकर नाचे थे ।

बाणा०—तब तो दूसरी प्रकार से भी तू मेरा शत्रु है ! तू वैष्णव है और मैं वैष्णव संप्रदाय का कट्टर वैरी हूं !

अनि०--अगर तू वैष्णव सम्प्रदाय का वैरी है तब तो मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं उसका मुक़ाबला कर रहा हूं जो मेरे धर्म का विरोधी है :—

अबतलक समझा था रिश्ता मैं श्वसुर दामाद का।
पर समझ में आगया सब जाल अब सैयाद का॥
याद रख ज़ालिम न अब बच्चा है तेरे सामने।
वैष्णवों के धर्म का लोहा है तेरे सामने॥

बाण०--छोकरे, साँप की बाँबी में हाथ न डाल !

अनि०--डालूंगा, मगर साँप को पकड़नेवाले बैगी की तरह।

बाण०--अच्छा तो ले ! (तलवार निकालकर) तूने मेरी यह चमकती हुई तलवार नहीं देखी है ?

अनि०--देखी है, माता की गोद में से निकलने के बाद ऐसी कितनी ही तलवारों से मैं खेला हूं।

बाण०--नादान, मेरे गुस्से की आग को क्यो भड़का रहा है ?

अनि०- ताकि वह तेरे पापो को भस्म करके तुझे शुद्ध वैष्णव बनादे।

बाण०--अच्छा तो ख़बरदार !

अनि०--धिक्कार, निहत्थे बालक पर वार करते लज्जा नहीं आती ? वीर है तो खम ठोक कर मैदान में आ। मुझसे कुश्ती लड़के फ़तेह पा।

बाण० अच्छा तो आजा।

(तलवार फेंककर कुश्ती लड़ता है
अनिरुद्ध उसकी छाती पर चढ़ बैठता है)

बाणा०- (सिपाहियों से) सिपाहियो, क्या देख रहे हो ?

(सिपाहियोंका दौड़कर अनिरुद्ध को पकड़ना
और बाणासुर का उठ खड़े होना)

बाणा०-इसे नागपाश में बाँध लो !

[सिपाही अनिरुद्ध को बांध लेते हैं]

अनि०-थू है ऐसी शान में लानत है ऐसी चाल में ।
शेर के बच्चे को फांसा इस तरह पर जाल में ॥

बाणा०-फांसा ही नहीं बल्कि समाप्त करदेना है । इस तलवार से सिर उड़ा देना है ।

[मारना चाहता है, उसी समय वायुयान में ऊषा चित्रलेखा सहित आती है]

ऊषा--ठहरिये, पिताजी ठहरिए !

बाणा०-है ! यह कौन ! ऊषा ? राज-व्योमयान पर ? क्या कहती है ?

ऊषा-(सामने आकर) उन्हें न मारिए—

पिता तुम व्याज खोकर मूल भी अपना गँवाओगे ।
उन्हें मारा तो विधवा-वेश में ऊषा को पाओगे ॥

बाण०-तो तू भी ले !

(कमान पर तीर का खींचना और
भगवती उमा का प्रकट होना)

उमा-ठहरो—

बाणा० कौन ? माता जी ?

उमा-हां, बाणासुर !—

इसे कलपाओगे जो तुम तो तुम भी कल न पाओगे
अगर ऊषा को मारा तो उमा का दिल दुखाओगे।

* अंक तीसरा *

पहला दृश्य

(स्थान द्वारिकापुरी)

[रुक्मिणी और कृष्ण का प्रवेश]

रुक्मि० नाथ, कितनी बार मैंने आप से कहा, परन्तु आप ध्यानही नहीं देते हैं ! क्या आपके हृदय में अनिरुद्ध की ममता नहीं है ?

श्रीकृ०-प्रिये, मैं सब सुनचुका । गाफ़िल नहीं हूं । तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए कि अनिरुद्ध की सहायता को उद्धव के साथ स्वयं बलदाऊ भैया गये हुए हैं !

रुक्मि०-यह मैं भी जानती हूं । परन्तु मेरा कहना तो यह है कि आप क्यों नहीं गये ?

श्रीकृ०—प्यारी रुक्मिणी, सुनो, संसार में हानिलाभ, जीवन-मरण, यश और अपयश, यह सब बातें तो रोज ही होती रहेंगी। मैं कहां कहां जाऊं ? पुत्र पौत्र सब प्राप्त होगए अब भी घर में बैठकर शान्ति न पाऊं ?

रुक्मि०—शान्ति और सुख प्राप्त करो, परन्तु कब ? जब पुत्र और पौत्र की रक्षा करचुको। संतान को अपने समान बनाने की चेष्टा करचुको —

जो समझदार हैं यूं काम किया करते हैं।
घर बना चुकने पै सन्यास लिया करते हैं॥

श्रीकृ०—तुम तो पीछे ही पड़गई। तुम्हें यह भी न भूल जाना चाहिए कि अनिरुद्ध की सहायता को बारह अक्षौहिणी सेना भी गई हुई है।

रुक्मि०-सेना गई है तो क्या हुआ, वह सब तारोंके समान है। युद्ध का आकाश उस समय तक पूर्ण प्रकाश न पाएगा, जबतक पूर्णचन्द्र वहां अपना प्रकाश न फैलाएगा। नाथ, वृन्दावन के वन बछड़ों के लिए जब आप स्वयं ब्रह्माजी तक से लड़ने को तैयार होगये थे तो क्या आज अपने पौत्र अनिरुद्ध की रक्षा के लिए आप कुछ न करेंगे ?—

जिनके कारण नखपर तुमने गिरि गोवर्धन धाराथा।
अधम अघासुर नीच बकासुर कुटिल कंस को माराथा॥
काली का मदमर्दनवाले, अपना बल फिर दिखलाओ।
पौत्र घिरा है जो संकट में, उसे छुड़ाकर ले आओ॥

श्रीकृ०—यह जो तुमने मेरे बालकाल के चरित्रों का बखान

किया है, सो इस बखान के समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि मैंने वह जो कुछ किया था उसका लक्ष्य था परोपकार!

रुक्मि०-प्रभो, यदि वह सब काम आपने परोपकार के लिए किए तो यह काम गृहोपकार के लिए कीजिए। नहीं तो मैं यह कहूंगी कि संतान पर माता जितना प्यार रखती है, पिता उतना नहीं रखता।

श्रीकृ०-तो क्या तुम यह कहोगी कि पिता के नाम का पहला अक्षर 'प' पुत्र का पालन पोषण सूचित नहीं करता है?

रुक्मि०-करता है, परन्तु माता के नाम का 'म' तो साक्षात् ममता की मूर्ति होता है। यदि विश्वास न हो तो प्रत्यक्ष देखलीजिए, वह देखिए, मातृ-स्नेह की सजीव मूर्ति आपके सामने इधर ही आरही है!

श्रीकृ०-हैं! यह कौन आरही है? क्या रुक्मावती?

रुक्मि०-हां, प्रद्युम्न की स्त्री, अनिरुद्ध की माता और आपकी पुत्रवधू पुत्री रुक्मावती!

[रुक्मावती का प्रवेश]

रुक्मावती-आह अनिरुद्ध! बेटा अनिरुद्ध!

रुक्मि०-द्वारिकानाथ, देख रहे हैं आप?

यह आँसुओं की धारा माता की मामता है।
इस प्यार के कूजे में सागर भरा हुआ है॥

रुक्मा०-(कृष्ण से) भगवन्, मैंने आजतक कुल की मर्यादा को ध्यान में रखकर आपके सामने मुंह भी नहीं खोला है, परन्तु आज पुत्र पर संकट जानकर मेरा रुआँ रुआँ डोला है। इसीलिए

लाज के पर्दे को हटाकर 'रक्षा' की प्रार्थना करने के लिए मेरा आत्मा आपके सामने इस प्रकार बोला है :—

दया करिये दयामय पुत्र पै सङ्कट न आजाये।
वहां खुद जाइये जिससे विजय वह बाल पाजाये॥
जिन हाथों ने कि दावानल से ब्रज अपनी उबारी है।
उन्हीं हाथों पै मेरे लाल की भी आज बारी है॥

श्रीकृ०—पुत्री, बस, अब तुम्हारा यह करुणा भरा संताप नहीं देखा जाता है, मेरे हृदय सागर में ज्वारभाटा आता है। जाओ, तुम शान्ति पूर्वक अपने महलों में जाओ। अब मैं स्वयं शोणित-पुर जाता हूं और विजय पूर्वक अनिरुद्ध को लाता हूं।

रुक्मा०—उपकार, अनन्त उपकार! [चलीजाती है]

श्रीकृ—(रुक्मिणी से) रुक्मिणी, तुम भी इसके साथ जाओ और इसका जी बहलाओ। (रुक्मिणी का जाना)

श्रीकृष्ण (स्वगत)-समय आगया, अब मुझे अवश्य शोणित-पुर जाना चाहिए और अनिरुद्ध को छुड़ाने के बहाने दुष्ट बाणासुर का मद मर्दन करके वहाँ पर होनेवाले शैव वैष्णवों के झगड़ों को भी मिटाना चाहिए :-

इधर अनिरुद्ध का इस कष्ट से उद्धार होजाये।
उधर धर्मों के झगड़े का भी बेड़ा पार होजाये॥

परन्तु अकेले चलना ठीक नहीं है। सुदर्शन को भी साथ लेचलना चाहिए। अच्छा तो सुदर्शन को इस समय स्मरण करना चाहिए। [स्मरण करना और सुदर्शन का आना]

सुदर्शन [आकर] भगवन्, प्रणाम!

श्रीकृष्ण०—आओ, सुदर्शन आओ। देखा तुमने! तुम्हारी एक छोटी सी भूल का कितना भयङ्कर परिणाम हुआ? यदि उस समय तुम पहरे पर से न हटते तो कभी ऐसा अवसर न आता। तुम्हारे वहाँ मौजूद रहने पर कैसे कोई अनिरुद्ध को उठाकर लेजाता?

सुदर्शन-भगवन्, मैं तो अपनी उस ग़ल्ती पर स्वयं ही लज्जित हूं। अब लजे हुए को और क्यों लजा रहे हैं:—

अगर बदला हो उस ग़ल्ती का कोई तो बता दीजे।
खड़ा है सामने दोषी, जो जी चाहे सज़ा दीजे॥

श्रीकृ०—सज़ा तो नहीं, परन्तु उस ग़ल्ती का एक नतीजा तुम्हें भोगना ही पड़ेगा!

सुद०—वह क्या?

श्रीकृ०—भगवान् शंकर के त्रिशूल के साथ लड़ना पड़ेगा।

सुद०—सो किस प्रकार?

श्रीकृ०—तुम्हें अभी हमारे साथ अनिरुद्ध की सहायता के लिए शोणितपुर चलना पड़ेगा। कदाचित्, बाणासुर की सहायता के लिए भगवान् शंकर आये तो हमें उनसे और तुम्हें उनके त्रिशूल से लड़ना पड़ेगा।

सुद०—तो क्या वहाँ आपका शंकर के साथ युद्ध होगा।

श्रीकृ०—हाँ, दुनिया के दिखाने को होगा। परन्तु वास्तव में हमारा उनसे न कभी युद्ध हुआ है और न कभी होगा। देवताओं के यह सब गुप्त रहस्य हैं, इन्हें समझकर तुम क्या करोगे?—

कभी उठते हैं मिलने को कभी धाते लड़ाई को।
सभी कुछ देवता करते हैं दुनिया की भलाई को ॥

सुद०—अच्छा तो यह सेवक चलने को तैयार है।

श्री०कृ०—बस तो अब सिर्फ गरुड़ को बुलाने का इंतिज़ार है। क्योंकि वहां पर शीघ्र पहुंचाने का उसी को अधिकार है।

[गरुड़ को स्मरण करना और उसका आना]

गरुड़—(आकर) भगवन् प्रणाम !

श्रीकृ०—आओ, गरुड़जी आओ !

गरुड़—क्या आज्ञा है स्वामिन् ?

श्रीकृ०—तुम्हारे मित्र सुदर्शन ने जो भूल की है वह तुम्हे मालूम है ?

गरुड़—हां महाराज, पहरेदार की गल्ती मुझे मालूम है।

श्रीकृ०—बस, तो उसी के परिणाम में इनके साथ साथ तुम्हे भी थोड़ा सा कष्ट उठाना होगा।

गरुड़ वह क्या ?

श्रीकृ०—मेरे साथ वाणासुर के नगर को चलना होगा। वहाँ अनिरुद्ध नागपाश में बंधा हुआ पड़ा है। तुम्हें उस पाश का खडन करना होगा।

गरुड़—यह तो अपनी रोज़ की खुराक है। कष्ट की क्यों यह तो दावत की बात है !

श्रीकृ०-अच्छा तो चलनेकी तैयारी करो। [दोनों का जाना]

(हरि मन्दिर)

गंगा०--[स्वगत] जय बोलो बेटा गङ्गादास, श्रीगुरुजी महाराज की जय बोलो, जिन्होंने धर्म की सच्ची कौड़ी थमाई ! कहाँ तो हम जैसे मूर्ख सौदाई और कहाँ गुसाईं की पदवी पाई। संसारको चाहिए कि पुराने गुरुओंको छोड़कर मुझ जैसे नये व्यास को गुरु माने और मेरी सेवा में अपना सब तरह कल्याण जाना मैं तो नित्य सवेरे उठकर श्रीठाकुरजी से यही प्रार्थना किया करता हूं कि हे भगवन्, अब इन गुरुजी को शीघ्र अपनी सेवा में बुला लो और मुझे इनकी गद्दी पर बिठा दो।

हां, गुरुजी महाराज आज विष्णुपुराण का सत्संग सुनाएँगे और इस नगर के समस्त वैष्णव उसे सुनकर आनन्द पाएँगे। किन्तु गुरुजी चतुर चेलियों ही की ओर ध्यान जमाएंगे—

चटक मटक भरी आती यहाँ पै चेली है।
गुरू के बाग़ का हर फूल बस चमेली है॥

(कुछ चेलियों का आना)

महँत--[आकर] अरे बेटा गङ्गादास, खड़ा २ सोच क्या रहा है ? देखतो यह सुखदेई, हरदेई, रामदेई, आदि सब आगईं, परन्तु माधवीजी अभी क्यों नहीं आई ?

गङ्गा०--[सामने देखकर] सामने से वह शायद माधवीजी ही आरही हैं। (माधवी का आना)

महंत--क्यों माधवी, आज तुम इतनी देर से क्यों आईं ? अबतक कहां थी ?

गङ्गा०-थी कहाँ, विधवा होने के लिए अखंड तपस्या कर रही होगी।

माधवी-क्या बताऊँ गुरुजी महाराज, मेरा तो ऐसे पति से पाला पड़ा है कि मैं कुछ कह ही नहीं सकती। जभी अपने मुंह से मैं गुरुमन्दिर का नाम निकालती हूं कि उनकी त्योरी चढ़ जाती है। मैंने जैसे ही कहा कि गुरुजी के दर्शन कर आऊं, सो तत्काल वे गुरु-प्रथा की निन्दा करने लग गये!

गङ्गा०-तो उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होगी!

माधवी-परन्तु मैंने उनकी एक न मानी और लड़ झगड़ कर सीधे यहाँ आने की ठानी। अब अगर वे नाराज होजायंगे तो मेरा क्या बिगाड़लेंगे? दो चार दिन हाथ से ही थोप कर खालेंगे।

महंत-बहुत अच्छा किया, तुम्हें ऐसा ही करना चाहिए था। भगवान् श्रीकृष्णजी की भक्ती में "ब्रज वनितन पति त्यागे भइ जग मंगल कारी" अर्थात् जब ब्रज की स्त्रियों ने अपने पति को त्यागा, तभी वे मंगल कारी हुईं। इस वास्ते जो मूर्ख नास्तिक पति या पुत्र गुरुचरणों की सेवा छुड़वाता है वह घोर नरक में जाता है। अच्छा आ, सावधान होकर सत्संग सुन। विष्णु पुराण में भगवान् का ध्यान श्वेतवर्ण का लिखा हुआ है, और सब पुराणों में श्यामरङ्ग को माना है। जैसा कि—

शुक्लाम्बर धरं विष्णुं, शशिवर्णं चतुर्भुजं।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशांतये॥

इसका अर्थ हमारे आचारीजी ने इसप्रकार किया है कि यथार्थ में यह दही बड़े का वर्णन है। क्योंकि शुक्लांबर का

अर्थ सफेद दही लगा हुआ और विष्णु का अर्थ विशेष रूप से बना हुआ है, शशिवर्ण का अर्थ चन्द्रमा की तरह गोलगोल और चतुर्भुज का अर्थ जोहैसो चतुर लोगो का भोजन है । इसप्रकार जो है सो प्रसन्नवदन अर्थात् जिसके ध्यान से मुख प्रसन्न होजाता है, अर्थात् मुखमे पानी भर आता है उस दही बड़े को नमस्कार है।

सब०—वाह, वाह, धन्य है, धन्य है, गुरुजी महाराज धन्य है।

महंत—परन्तु इस श्लोक का हमारे दादा गुरुने अर्थ यही किया है कि शुक्लांबरधरं अर्थात् सफेद रंगवाला रुपया विशनूजी की तरह स्वच्छ और शशिवर्णं चन्द्रमा की तरह गोल एवं चतुर्भुजं कहिए चार भुजा वाला अर्थात् एक रुपये की चार चौअन्नी होती हैं। सो ऐसे जिस रुपये के ध्यान से मन प्रसन्न होता और विघ्न शांत होजाते हैं, उस रुपये का ध्यान करो। क्योंकि यह रुपया मरने पर साथ नहीं जाता, यह बड़े शोक की बात है। (गद्गद होकर) हमारे गुरुजी भी सब रुपया यहीं छोड़ कर चलेगये, जोहैसो इस रुपये की महिमा कहांतक कही जाय।

[आंखो में आंसू आजाते हैं और गला भर जाता है]

गङ्गा०—परन्तु गुरुजी, आपकी यह बातें मेरी तो समझ मे बिल्कुल नहीं आई !

महंत—चुपरह मूर्ख, सत्संग में विघ्न डालता है ?

एकदा नार दो योगी, परानुग्रह कांक्षिया।
पर्यटन विविधान् लोकान्, विष्णु लोके समायतम्॥

एक समय दूसरों की भलाई के समय जिन्होंने कान छिया है ऐसे दो योगियों ने ब्रह्माजी को एक नार लाके दी। तब ब्रह्मा

जी ने बहुतसे लोटों में उसको पर्यटन कराके विष्णुजी के लोटे में वह नार सौंपदी। जोहैसो वही लोटेवाली नार अबतक श्रीविष्णु भगवान् के पास है।

गङ्गा०—और वह लोटा विष्णु भगवान् ने गुरुजी महाराज के भंडार में लौट दिया है।

महंत—मानता नहीं मूर्ख, सत्संग में विघ्न डाले ही जाता है। हाँ, तो उस नार का क्या ही सुन्दर मुख था, जोहैसो वर्णन में नहीं आसकता। अहा, नाक सुआ जैसी, गाल पुआ जैसे, आँख लड्डुआ जैसी और ... (गद्गद् होजाते हैं)

[इतने में राधारानी का वहां आना और महंत का उसे देखना]

राधा०—[स्वगत] मैंने सुना है कि यहाँ एक महंत अच्छा सत्संग करते हैं, सो मैं भी उसे सुनने की इच्छा से यहाँ आगई। परन्तु कहीं यह कोरा बकवादी तो नहीं है? (खड़ी रहजाती है)

महंत—[गङ्गादास को इशारे से बुलाकर धीरेसे] बच्चा, देख तो यह कोई नई नवेली, चटक चमेली कौन है? क्या तू इसके विषय में कुछ जानता है?

गङ्गा०—हाँ, गुरुजी जानता तो जुरूर हूं।

महंत—क्या जानता है बच्चा?

गङ्गा०—यही कि मैं इसे जानता तक नहीं।

महंत—(राधा से) आओ माई, तुम भी सत्संग सुनो।

सुखदेई—(राधा से) आइये, कर्मवीर श्रीकृष्णदासजी की धर्म-पत्नी श्रीराधारानीजी आइए!

महंत—हाँ तो, स्त्रियों को पति की सेवा ही करनी चाहिए। क्योंकि पति ही स्त्रियों का सब कुछ है, परन्तु इसके साथ साथ

गुरु की भी सेवा करनी चाहिए। क्योंकि गुरु सेवा भी जोहैसो स्त्रियों का मुख्य धर्म है।

गङ्गा०—सतयुग और त्रेतामें तो पति सेवा ही प्रधान रहती है, किन्तु द्वापर और कलियुग में गुरु सेवा प्रधान होजाती है !

महंत—(गङ्गादास से) अरे चुपरह अज्ञान ! विघ्न डाले चला आता है (स्त्रियों से) हाँ, तो गुरु के लिए तो वेदों में जोहैसो ऐसा लिखा हुआ है—

गुरू स्वामी गुरू विष्णू गुरू देवो जनार्दनः।
गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अर्थात् स्त्रियों का स्वामी कोई है तो गुरू है, और मुख्य देवता कोई है तो वह भी गुरु है। यहांतक कि साक्षात् परब्रह्म भी अगर कोई है तो गुरु है। इसलिए गुरु को अपना स्वामी जानकर नमस्कार करो, और अपना तनमन धन सब गुरु सेवा मे लगाओ। (सब प्रणाम करती हैं, राधा नहीं करती है)

राधा०—[स्वगत] निःसन्देह मुझे तो यह कोई धूर्त जान पड़ता है। ऐसे ही छलछंदी लोगों ने नारी समाज को वैष्णव धर्म की बातें मनमाने ढंग से समझाकर अपना मतलब साधना और वैष्णव धर्म को बदनाम करना शुरू किया है (प्रकट) श्री महाराज, यह किस वेद का वचन है ?

महंत—[चौंक कर राधा की तरफ़ देखते हुए स्वगत] अब आई मुश्किल बचा माधोदास, इसके प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं दिया गया तो अभी सब पोल खुल जायगी। (प्रकट) धन्य माई धन्य, मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम धर्मशास्त्र की

अच्छी तरह पूछ परख करलेने पर ही किसी बात को मानती हो ।
जोहैसो यह वाक्य उस वेद का है जिसका नाम अर्थवेद है ।

राधा०–[आश्चर्य से] हूँय ! अर्थवेद या अथर्ववेद ? इस वेद का नाम तो मैंने आज ही सुना ।

गङ्गा०–सुनतीं कैसे ? वह तो ब्रह्माजी ने जब चारों वेदों को अपने मुख से छोड़ा, तब इस अर्थवेद का सार भाग हमारे गुरुजी के ही मुख में गुप्तरूप से डाल दिया ।

महँत–जोहैसो विसेस तर्क करने की आवश्यकता नहीं है, गुरुवचन को ही शास्त्र का प्रमाण मानना चाहिए । विष्णु पुराण में लिखा है कि एक समय श्रीविष्णु भगवान् क्षीरसागर में सोये हुए थे कि इतने में वहाँ भृगु रिषी जा पहुंचे । वहाँ उन्होंने श्री विष्णु भगवान् को शेष शय्या पर सोया हुआ देखकर अपना अपमान समझा । और तत्काल विष्णु भगवान की छाती पर जोर से एक लात जमाई । लात के लगते ही विष्णु भगवान् उठ खड़े हुए और उन्होंने भृगुजी का पाँव पकड़ लिया, तथा कहने लगे कि हे रिषिराज मेरे इस कठोर शरीर पर लात मारने से आपके पाँवमें कहीं चोट तो नहीं आई ! (गद्गद होजाना और गला भरआना) अहाहाहा ! ऐसे पर ब्रह्म विष्णु भगवान् की झांकी छोड़कर जो लोग शिव जी की पूजा करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं ।

(इतने मे शैव संप्रदाय के एक मनुष्य का वहां आना)

शैव:-क्या बकता है मूर्ख ! इन भोले भालों को मनगढ़ंत बातें सुनाकर धोखे में डालता है और शैवसम्प्रदाय की निन्दा के शब्द मुंह से निकालता है !

महन्त:—अरे निकालो, निकालो, यह कौन विधर्मी यहाँ घुस आया है इसे अभी यहाँ से निकालो।

शैव:—रे नादान, क्यों नाहक जुबान चलाता है! तू मुझे क्या कोई ऐसा वैसा समझता है जो इस तरह धमकाता है?

महंत:—तो बता, तू कैसे हमें अनाड़ी बताता है। इसका प्रमाण दे नहीं तो अभी तुझे शास्त्रार्थ करना होगा!

गंगा:—और यदि शास्त्रार्थ न किया तो मुझसे शस्त्रार्थ करना होगा।

शैव:—अरे, क्यों व्यर्थ बकवाद किये जाता है।

महंत:—अरे गङ्गादास, देखता क्या है? मार डंडा और करदे दुष्ट को ठंडा।

(गङ्गादास का शैव को मारने दौड़ना, इतने ही मे कृष्णादासका वहां आजाना)

कृष्णदास:—ठहरो, भाइयो ठहरो। सत्सङ्ग में तुम लोग कैसा रसभङ्ग कर रहे हो!

गङ्गा:—यह दुष्ट यहाँ आकर गुरू जी महाराज को अपशब्द सुनाता है, और उन्हें मूर्ख अनाड़ी बताता है। हमारे सीधी तरह समझाने पर भी यहाँ से नहीं जाता है।

शैव:—नहीं, मैं यहां से कभी नहीं जाऊंगा, और अभी सब लोगोंके सामने तुम्हारे वैष्णव संप्रदायकी पोल खोलकर दिखाऊंगा।

महंत:—हैं! फिर वही बात मुंह से निकाली!

कृष्ण:—शाँत, शाँत, शाँत हो जाओ, व्यर्थ के लिए इन साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़कर वैर न बढ़ाओ।

शैव:-यह आप क्या कहरहे हैं? इन वैष्णवों से हमारा मेल कैसे हो सकता है ? ये तो हमारे इष्टदेवकी निंदा करते हैं !

गङ्गा०:-तो तुम हमारे इष्टदेव की निंदा नहीं करते हो ?

कृष्ण०:-तब तो मैं तुम दोनों की निंदा करूंगा जो आपुस में झगड़ते हो !

शैव:-अच्छा तो आपही बताइये, परस्पर मेल होने का आप क्या उपाय बताते हैं ?

कृष्ण०:-सुनिये, आप जो शैव सम्प्रदाय को ऊंचा बताकर वैष्णव सम्प्रदाय की निंदा करते हैं यह आप की भूल है। इसी प्रकार (महंत से) आप जो वैष्णव सम्प्रदाय की श्रेष्ठता बताकर शैवों से वैर बढ़ाते हैं यह भी धर्म प्रति-कूल है। क्योंकि दोनों सम्प्रदायोंका एक ही लक्ष्य है। न तो शिव विष्णु से बड़े हैं और न विष्णु शिव से। बल्कि "शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोस्तु हृदयं शिवः" के अनुसार शिव के हृदय में विष्णु विराजमान हैं और विष्णु का हृदय शिव जी का निवासस्थान है ! यही नहीं, बल्कि शिव जी के त्रिशूल चिन्ह को तिलक रूप में वैष्णव धारण करते हैं, और विष्णु के धनुष को उसी रूप में शैव धारण करते हैं।

सबलोग:-धन्य, महाराज धन्य ! आपने आज हमसब का अज्ञान दूर करदिया है और हम पर बड़ा भारी उपकार किया है।...बोलो, संगठन की जय, एकता की जय, शिव विष्णु की जय, हरी हर की जय !

कृष्णदास-··

❀ गाना ❀

उसी का जीवन है धन्य जगमें, जो सेवा व्रतमें लगा हुआ है ।
सिखाया दुनियाको धर्म्म उसने, जो धर्म्मपै खुद मिटा हुआ है ॥
उसीका है तेज नभ के ऊपर, उसीका तप भूमि के है भीतर ।
सदा जो परमार्थ की अनल में, सुवर्ण जैसा तपा हुआ है ॥
जिया है जो दूसरोंकी ख़ातिर, मरा है जो दूसरोंकी ख़ातिर ।
अमर सदा है वह इस जगत में, जगत उसीपर खड़ा हुआ है ॥
जहाँ के तख़्ते पै नाम उसका, सदैव स्वर्णाक्षरों में चमका ।
असत पै जिसने क़दम न रक्खा, सदा जो सतपर डटा हुआ है ॥
उसीने पाया है उस सुधा को, वही रिझाता है देवता को ।
मिटाई है जिसने अपनी रङ्गत, अमिट के रङ्ग में रँगा हुआ है ॥
समान है हर्ष, शोक उसको, हैं एकसे दोनों लोक उसको ।
लगाके लौ 'राधेश्याम' प्रभुमें, सदा को जो टहलुआ हुआ है ॥
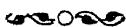
दृश्य तीसरा

(कारागार)

(अनिरुद्ध का नागपाश में बँधेहुए दिखाई देना)

अनिरुद्धः-(स्वगत)

विधना कहां हुआ है, आकर मेरा ठिकाना ।
पिंजड़े में लाया मुझको, मेरा ही चहचहाना ॥

डर वाण का नहीं है, जब ध्यान में ऊषा है ।

ऊषाः—(गुप्त वेश मे चित्रेरखा के साथ आकर)

जब ध्यानमें ऊषा है, तो नागपाश क्या है ?

अनि०:—कौन ? नागपाश का नाम लेनेवाली तुम कौन हो ? इस समय कारागार में आने वाली तुम कौन हो ? देवी हो या दानवी ! किन्नरी हो या मानवी ! कल्याणी हो या भैरवी ! छाया हो या माया ! बताओ तुम कौन हो ?

चित्र०:—(आगे बढ़कर)

न छाया हैं न माया हैं न देवी दानवी हम हैं ।
जो दम भरता है दमदम पर उसी हमदमकी हमदम हैं ॥

अनि०:—मैं नहीं समझा, स्पष्ट कहो तुम कौन हो !

चित्र०:—हम वो हैं जो आप जैसे निरपराधी को कारागार में नहीं देख सकती हैं, और आप के हृदय में जिसका प्यार है उससे भी बढ़कर रूपवती, गुणवती नारी से आपका विवाह करा सकती हैं !

अनि०:—बन्द कीजिए,बन्द कीजिए, ये वाक्य रूपी प्रहार वंद कीजिये। ये शब्द बाण मुझे तीक्ष्ण वज्रकी तरह सताते हैं। तक्षक पाश से भी अधिक कष्ट पहुंचाते हैं ।

चित्र०:—इसीलिए तो हम तुम्हें छुड़ाना चाहती हैं। हमारी बात पर ध्यान दीजिए और ऊषा का विचार छोड़कर हमारे साथ चलने की तैयारी कीजिए ।

अनि०—क्षमा कीजिए, बारबार उसी बात को दुहरा कर मेरी आत्मा को दुःख न दीजिए। ऊषा के विषय मे आपके चित्त मे जो बुरा भाव है उसे निकाल दीजिए :—

ऊषा का प्यारा नाम मुझे, दुखमें भी सुख पहुंचाता है
इस कारागार में ऊषा ही, विरही की जीवनदाता है

ऊषा—(चित्रलेखा से) बहन चित्रलेखा, देख ! विरही का विरह देख ! प्रेमी का प्रेम देख ! मेरा दिल तो अब नहीं मानता !

चित्र०—तो क्या करोगी ?

ऊषा—यह माया का पट हटाकर चकोरी अपने चंद्र का दर्शन करेगी !

चित्र०—सखी, तनिक धीरधरो, इसतरह एकदम अधीरता प्रकट न करो। [अनिरुद्ध से] राजकुमार यह तुम्हारी भूल है, ऊषा ही तुम्हारे सारे दुखों की मूल है !

अनि०—हैं, फिर वही बात ! फिर वही ढाक के तीन पात ! तुम्हारा उपदेश मेरे धर्म के प्रतिकूल है।

जब ऊषा जैसा रत्न नहो तो व्यर्थ ये मनमंजूषा है।

चित्र०—मनमंजूषा की भूषा है···

ऊषा—[बुर्का हटाकर आगे बढ़ते हुए] तो लो हाज़िर यह ऊषा है।

[ऊषा का प्रकट होजाना और बाणासुर का आना]

बाणा०—[आश्चर्य से] हैं ! ऊषा !! महल मे भी ऊषा, झूले पर भी ऊषा, वायुयान पर भी ऊषा और कारागार में भी ऊषा ? सब जगह ऊषा ही ऊषा !

अनि०—हाँ, तेरी अभिमान रूपी रात्रि का अंत करके अब यह ऊषा रूपी प्रकाश संसार के सामने आता है, इसीलिए तुझे ऊषा का नाम नहीं सुहाता है।

बाणा०—ओ ज़िद्दी लड़के तू क्यों अपनी शामत बुलाता है! नागपाश में बँधा रहने पर भी तू अनिरुद्ध कहाता है?

अनि०—हाँ हाँ, नागपाश में बँधा रहने पर भी अनिरुद्ध अनिरुद्ध कहाता है!

बाणा०—अरे अनिरुद्ध का अर्थ तो स्वतंत्र है, परन्तु तू यहाँ परतँत्र दिखाता है :—

पड़के कारागार में स्वाधीन स्वर बेकार है।
जिस्मपे नागों के फन्दे सरपे ये तलवार है॥

ऊषा—अगर उस सर पर तलवार है तो ऊषा के जीवन पर भी धिक्कार है! उस शीस के बदले यह शीस तलवार की भेंट होने के लिए तैयार है :—

तलवार का करना ही है वो वार कीजिए।
पुत्री को पहले, हे पिता बलिहार कीजिए॥

बाणा०—अच्छा तो आज इस दुधारी तलवार से तुम दोनों के सर उड़ाता हूं :—

[यह कहकर मारने को झपटना और
उद्धव बलराम का आपहुंचना]

बलराम—ठहरजा, दुष्ट ठहरजा :—

तल्वार उठा करके न बढ़ बाल के आगे।
लड़ना है तो लड़ आके तू इस काल के आगे॥

बाणा०—[आश्चर्य से] हैं ! तुमलोग यहाँ कैसे आगये ?

बल०—जैसे पुराने मकान के छिद्रों में होकर सूर्य की धूप आजाती है, उसी प्रकार तेरे पापों से कमजोर होजानेवाले क़िले में प्रवेश करके आज यादवों की सेना अपना जयघोष सुनाती है।

बाणा०—तो मेरे सब शैव वीर कहाँ हैं ? अरे धूम्राक्ष ! (वैष्णव वेष में धूम्राक्ष का आना) हैं ! तेरे मस्तक पर वैष्णव तिलक ? पिंगाक्ष ? (वैष्णव वेष में पिंगाक्ष को आत देखकर) हैं ! तू भी वैष्णव होगया ? वज्रमूर्ति ? (उसे भी वैष्णव वेष में देखकर) अरे, इधर भी वैष्णव ! वक्रशक्ति ! (वैष्णव वेष में देखकर) इधर भी वैष्णव ?

बल०—हां, सब वैष्णव ही वैष्णव ! बोलो वैष्णव धर्म की जय।

बाणा०—कुछ पर्वाह नहीं, मैं अभी अग्निबाण द्वारा सब को भस्म किए देता हूं।

[बाण चढाना और उसीसमय सीन बदलकर गरुड़ पर कृष्ण भगवान् का आना अनिरुद्ध के नागपाश के बंधन खुलजाना]

श्रीकृ०—अधर्मी बाणासुर तेरे पापका आज अंत है। इसीलिए इससमय यहाँ भयंकर भूकँप होगा।

बाणा०—भूकँप होता है तो होने दो ! प्रलय भी होता हो तो होजाने दो। तुम यदि अनिरुद्ध के सहायक हो तो मेरा

सहायक तुमसे भी बढ़कर है। तुम यदि सुदर्शनधारी कृष्ण हो तो मेरा स्वामी त्रिशूलधारी शंकर है !

श्रीकृ०-अच्छा तो देखना है मेरे चक्र के सामने कौन अड़ सकता है।

शिव० [एक क़दम आकर और त्रिशूल उठाकर] इस चक्र से यह त्रिशूल लड़ सकता है।

[त्रिशूल और सुदर्शन चक्र का युद्ध होनेलगता है]

वाण०-धन्य, त्रिपुरारी धन्य।

नारद-[आकर] त्राहिमाम्, त्राहिमाम्! रोकिए, भगवन् शाँत कीजिए ! इन दिव्य अस्त्रों के भयँकर युद्ध से ब्रह्माण्ड भस्म होजायगा। इस भयङ्कर लीला के कारण संसार आपके एक स्वरूप को द्वैतभाव से देखने लगजायगा। अतएव इस माया को समेटिए।

चक्र और त्रिशूल के बदले बजादो हरीहर।
ज्ञानका डमरू उधर और प्रेमकी वंशी इधर ॥

शिव-कृष्ण-एवमस्तु !

[अस्त्रों का युद्ध बंद होकर अलग होजाते हैं]

श्रीकृ०-वीर वाणासुर! हम और शिव वास्तव में एक हैं, वे मूर्ख हैं जो दोनों में भेद समझते हैं। यह तो एक होनहार बात थी जो होकररही, किंतु अब हमारा आशीर्वाद है कि तुम्हारा राज्य अटल रहेगा, और तुम्हारे हृदय से अज्ञान का पर्दा हटकर ज्ञान का श्रोत बहेगा !

बाण०--[प्रसन्न होकर] जय, जय, चक्रधारी की जय। आज मेरे धन्य भाग्य हैं जो मेरे द्वार पर चक्रधारी और त्रिशूलधारी दोनों आये हैं, पुत्री ऊषा के कारण मैंने हरिहर के एकसाथ दर्शन पाये हैं। [कृष्णदास और अन्यान्य शैव वैष्णवों का वहां आना]

कृष्णदास--देखो, हरिहर मे भेद समझनेवालो, देखो! जिस प्रकार संगम पर गङ्गा और यमुना में द्वैत नही है, उसी प्रकार विष्णु और शिव में भेद नहीं है। एक ओर यमुना-तट-विहारी हैं तो दूसरी ओर गङ्गधारी हैं, और बीच मे सरस्वती के समान यह ऊषा कुमारी हैं। इसलिए इस एकता की त्रिवेणी में स्नान करके संगठन रूपी अक्षयवट का दर्शन करो और अपने समस्त पापों का अघमर्षण करो।

श्रीकृ०-भक्तराज कृष्णदास! तुमने अपने प्रण को खब निभाया है। शैव और वैष्णव का झगड़ा मिटाकर एकता का झंडा फहराया है। तुम्हारे पिता की आत्मा को इससे पूर्ण शांति प्राप्त होगी और अंतमें तुम्हें भी मेरे धाम की प्राप्ति होगी।

शिव--भक्त बाणासुर, अब देवर्षि नारदजी के हाथ से कुमारी ऊषा का अनिरुद्ध के साथ पाणिग्रहण कराओ और इस रूप में शैव वैष्णव के संगठन का प्रत्यक्ष प्रमाण संसार को दिखाओ।

श्रीकृ०-पुत्री ऊषा, मेरा वरदान है कि भारत की नारियाँ सदैव तुम्हारा गुण गायेंगी और चैत्र मास मे तुम्हारा चरित्र श्रवण कर अचल सौभाग्य का फल पायेंगी।

[नारद ऊषा और अनिरुद्ध का पाणिग्रहण कराते हैं]

नारद---जब तक रवि और शशि रहें, जबतक महि आकाश।
तब तक ये दम्पति करें, जग में सुयश प्रकाश ॥

कृष्णदास :—

ऊषा और अनिरुद्ध का, पूर्ण हुआ सब काम।
जय हरिहर, जयविष्णुशिव, जय श्री 'राधेश्याम'॥

[अंत में फ्लाट फटकर हरिहर स्वरूप का दर्शन]

समाप्त

वीर अभिमन्यु

(लेखक—प० राधेश्याम कथावाचक)

बम्बई की 'न्यू अलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी' का यह लोकप्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक की बदौलत कम्पनी ने खूब धनार्जन और यशार्जन किया है। हिन्दी में अपनी शान का यह पहलाही नाटक है जो पारसी नाटक-मञ्चपर खेला भी जाता है और पञ्जाब विश्वविद्यालय की "हिन्दी भूषण" तथा 'एफ़, ए० क्लास की परीक्षा की पाठ्य पुस्तकोंमें भी स्वीकृत हुआ है।

संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभागने भी अब इस नाटक पर दृष्टि डाली है, और इसे 'एङ्गलो वर्नाक्यूलर, तथा 'वर्नाक्यूलर स्कूलों' में पारितोषिक देने एवम् लाइब्रेरियों में रखने के लिये चुना है।

हिन्दी के मशहूर अखबारों ने भी इसके लिये बढ़िया २ रायें दी हैं। देखियेः-

सरस्वती- 'नाटक मे वीर और करुणारस का प्राधान्य है।'

भारतमित्र—'वीर-अभिमन्यु हिन्दू आदर्श को सामने उपस्थित करने-वाला नाटक है।"

ब्रह्मचारी—"रोचकता और रसपरिपोष का तो यह हाल है कि पढ़ते २ बीच में छोड़ देना किसी विरले ही पुरुष पुङ्गव का काम होगा।"

आज-"अपने पुरुषों के गौरव तथा कर्त्तव्य परायणता का चित्र उत्तम रीति से खींचागया है।"

सनातनधर्म पताका—"इसके पुरातन भाव और नई पद्य रचना से हिन्दी साहित्य के प्रेमियों को अवश्य ही यथेष्ट लाभ पहुंचेगा।'

प्रताप-'स्टेजपर सफलता पूर्वक खेला जाचुका है, हम लेखकको बधाई देतेहैं

प्रतिभा—'नाटक बहुत अच्छा है। बड़ी सफलता से खेला जाता है'।

तीसरीबार दसहज़ार छपकर तयार हुआ है। दाम १) रु०

पता श्रीराधेश्याम पुस्तकालय, बरेली।

श्रवणकुमार

(ले०—प० राधेश्याम कथावाचक)

(यह नाटक संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा विभाग द्वारा 'ऐङ्ग्लोवर्नाक्यूलर तथा वर्नाक्यूलर स्कूलों' की लाइब्रेरियों मे रक्खे जाने एवम् पारितोषिक दिये जाने के लिये स्वीकृत हुआ है)

"श्रीसूरविजय नाटक" समाज के स्टेज पर खेला जाने वाला यह वह नाटक है जिसकी तारीफ़ लिखकर नहीं हो सकती। जिन्होने उक्त नाटक समाजमें जाकर इसका खेल देखा है वे ही जानते हैं कि यह नाटक क्या चीज़ है।

दिल्ली के दैनिक "विजय" ने इसपर यह राय दी है:-

'नाटक मनोरञ्जक और शिक्षादायक है।'

मथुरा के मासिक पत्र "गौड़हितकारी" की राय है:-

'इस पुस्तक के पढने पर श्रवण बालक के विचारों की' उसकी मातृ-पितृ भक्ति का वह चित्र हृदय पर खिचता है कि जिससे चित्त गद्गद् हो जाता है'।

काशी के दैनिक पत्र "आज" ने राय दी है कि—

'इस नाटक के नायक रामायण वर्णित प्रसिद्ध मातृ-पितृ-भक्त श्रवणकुमार है, और उनकी आदर्श मातृ-पितृ-भक्ति तथा उसके परिणाम इसमे दिखाये गये हैं। कविरत्नजी को नाटक के रोचक और परिणामकारी बनाने मे अच्छी सफलता हुई है। अपनी ओर से उन्होंने जिन पात्रो की कल्पना की है उनके चरित्र नाटक की उद्देश्य-सिद्धि में पूर्णरूप से सहायक है। अर्थात् उनके द्वारा माता पिता को सेवादि से सन्तुष्ट रखने और इसके विपरीत आचरण की भलाई और बुराई का चित्र दर्शकों के मन पर अधिक स्पष्ट रूप में अंकित होजाता है।

श्रीसूरविजय नाटक समाज बरसों से इस नाटक को बडी सफलता के साथ खेलरहा है। इस नाटक की भाषा साधु और ओजस्वी है, पद्य भाग भी अच्छा है। यह नाटक चौथीबार छपकर तैयार हुआ है। दाम ॥।)

पता—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय, बरेली।

राधेश्याम-कीर्तन ।

(लेखक- प० राधेश्याम कथावाचक)

"राधेश्याम कीर्त्तन" भजनों की पुस्तक है। इसके भजन बड़े ही मधुर और रसीले शब्दों में रचे गए हैं। जहाँ कहीं भी हार्मोनियम और तबले पर यह भजन गाए जाते हैं वहाँ सुनने-वाले तसवीर होकर रह जाते हैं। बड़े बड़े कठोर और शुष्क हृदय वाले भी इन भजनों को सुनकर पसीज उठे हैं। ईश्वर प्रार्थना, विद्या की महिमा, संसार की असारता, प्राकृतिक दृश्य, भक्ति, ज्ञान वैराग्य. नीति, सदाचार, कर्त्तव्यशीलता, पातिवृत धर्म आदि नाना विषयों पर सुन्दर भावों से भरे हुए मधुर रचना वाले, अनेक भजन इस पुस्तक में मिलेंगे। यह भजनों की पुस्तक लोगों ने इतनी ज़्यादा पसन्द की है कि थोड़े हो समय के भीतर इसको छःदफ़ा छपवाना पड़ा है। दाम ॥)

राधेश्याम-विलास ।

(लेखक-प० राधेश्याम कथावाचक)

यह भी एक अनोखी पुस्तक है। इसमें श्री राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्ध रखनेवाले, नाटक की चाल के गायन हैं। प्रत्येक भजन से रस टपका पड़ता है। भगवान् का गुणानुवाद भी हो और कानों में रस भी पड़े इस उद्देश्य को पूरा करने वाली यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। हज़ारों आदमियों की भीड़ में एक पद गादिया और सन्नाटा फैलगया। हाथ कङ्गन को आरसी क्या है एक पुस्तक मंगाकर देखलीजिए। टाइटिल पर श्रीराधाकृष्ण का तिरङ्गा चित्र भी इस बार छापा गया है। लगभग २५० गानो की पुस्तक का दाम ॥।)